अक्टूबर
१९६३
परमानन्द संदेश
आश्विन
२०२०

वर्ष ३ अङ्क १२
आश्विनसं०२०२०
अक्टूबर १९६३

परमानन्द संदेश

सचित्र आध्यात्मिक, धार्मिक मासिक

संस्थापक

श्री १०८ सद्गुरु बाबा शारदाराम मुनिजी महाराज, श्रीतीर्थ रामटेकड़ी, पूना।

सम्मान्य संरक्षक

महामण्डलेश्वर श्री स्वामी गंगेश्वरानन्दजी महाराज

संचालक

श्री अजित मेहता [बी० ई० सिविल]

सम्पादक—

आचार्य भद्रसेन

साधारण सदस्यों के लिये शुल्क
५)५० पांच रुपए ५० न० पै० वार्षिक

स्थायी सदस्यों के लिए
२५) पच्चीस रुपए ६ वर्षों तक

आजीवन सदस्यों के लिए
१५१) एक सौ इक्यावन रुपये

—*—

साधारण अंकोंका मूल्य—५० नये पैसे
पत्र-व्यवहार का पता :—

शारदा प्रतिष्ठान
सी० के० १५।५१ सुड़िया, बुलानाला
वाराणसी—१

❋ आवश्यक निवेदन ❋

❋ इस अंक के साथ 'परमानन्द सन्देश' का चालू वर्ष ३ समाप्त हो रहा है।

❋ आगामी विशेषांक 'निर्गुण महारामायणाङ्क' वर्ष चार का प्रथम अंक होगा।

❋ आपका चन्दा समाप्त हो गया है। नये वर्ष के लिये ५)५० न० पै० मनीआर्डर द्वारा भेजने की कृपा करें।

❋ वी० पी० द्वारा विशेषांक भेजने में असुविधा होती है। डाक खर्च अधिक पड़ता है। और वापस होने पर कार्यालय को हानि होती है।

❋ मनिआर्डर न आने पर सदस्यों के पास विशेषांक वी० पी० द्वारा भेजा जायगा। स्वीकार कर ज्ञानयज्ञ में सहयोग करने की कृपा करें।

सत्य ही सत्यदेव या सत्यनारायण है

[रचयिता चौ० गंगा प्रसाद जायसवाल "गंगा", धर्मरत्न, धर्म विशारद, डुमराँव]

सुख सौभाग्य सुयश सम्पति हित, सत्य सत्य कह मोर सखे ।
स्नेह-सुधा बरसेंगे तव गृह, सब विधि मंगल तोर सखे ॥
सत्य १ सुमिर कर साधू-बनिया, २ चला विदेश कमाने को ।
सत्यकर्म कर सत्यव्रती बन, इच्छा थी धन पाने को ॥१॥
सत्य-वचन के बल पर साधू, धन भरपूर जमाया था ।
उसे नाव में लाद चला घर, दूर बहुत वह आया था ॥२॥
सत्यदेव ने पूछा क्या है ? लता-पत्र जब बतलाया ।
लता-पत्र सब हुआ तुरत ही, झूठ कथन का फल पाया ॥३॥
हलका नाव देखि घबड़ाया, रो रो आँसू बहाया था ।
झूठ बोलने का फल पाकर, सारा द्रव्य गँवाया था ॥४॥
श्रोताओं ! क्या शिक्षा मिलती, सोच समझ सब काम करो ।
झूठ स्वप्न में भी मत बोलो, सत्यदेव से सदा डरो ॥५॥
चोरी हिंसा बचन झूठ तजि, सच-सच बचन सुनाओगे ।
सत्यदेव से तब ही "गंगा" शुभ असीस तुम पाओगे ॥६॥
सुख सौभाग्य सुयश सम्पति हित, सत्य सत्य कह मोर सखे ।
स्नेह-सुधा बरसेंगे तव गृह, सब विधि मंगल तोर सखे ॥

१—"सत्यमेव परं ब्रह्म सत्यरूपी जनार्दनः ।" अर्थात् सत्य ही परब्रह्म है, सत्य ही जनार्दन हैं (वही सत्यदेव या सत्यनारायण है ।)

२—साधु-बनिया की बात "श्रीसत्यनारायण व्रत कथा" में लिखी है ।
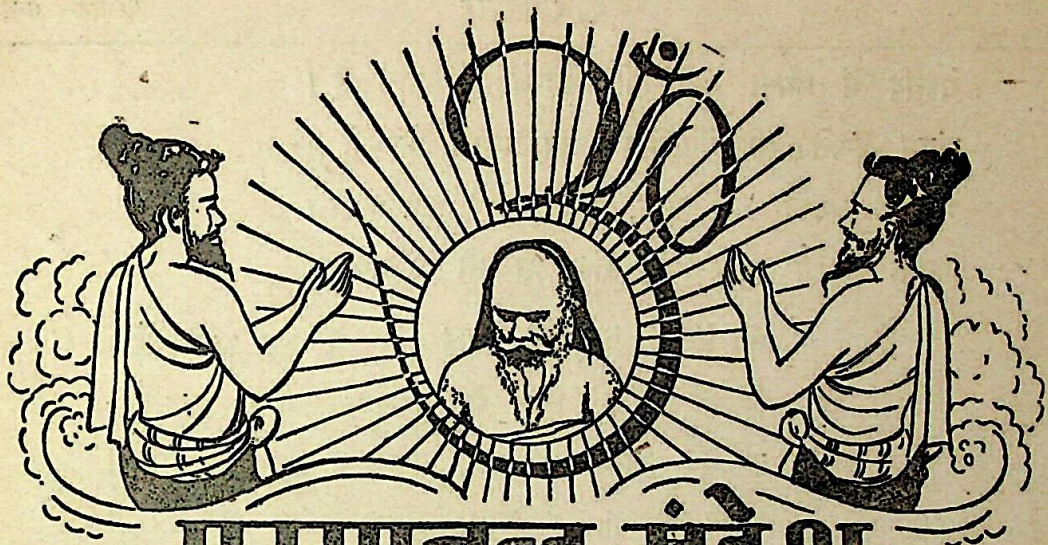
परमानन्द संदेश

ॐ जय सद्गुरु शारदाराम

दुख खण्डन परमानन्द मण्डन, है इस पत्र का भाव।
पढ़े सुने अमलो बने, सो लख पावे प्रभाव॥

वर्ष ३
अङ्क १२

वाराणसी आश्विन संवत् २०२०
अक्टूबर १९६३ ई०

वार्षिक चन्दा ५ रु० ५० न० पै०
एक प्रति ५० न० पै०

संसार से सो छुट गया।

संकल्प आदिक चित्त के सब धर्म से जो हीन है।
होती सभी जिसकी क्रिया, प्रारब्ध के स्वाधीन है॥
इच्छा बिना चेष्टा करे निज आत्म में है डट गया।
संसार में दीखे भले, संसार से सो छुट गया॥

धन की जिसे नहिं चाह है, नहिं मित्र की परवाह है।
आसक्ति विषयों में नहीं, प्रारब्ध पर निर्वाह है॥
सब विश्व मटियामेट कर, जो आप भी है मिट गया।
मिटकर हुआ है आप ही, संसार से सो छुट गया॥

गेहादि में ममता नहीं, नहिं देह में अभिमान है।
संतृप्त अपने आप में नित आत्म अनुसन्धान है॥
अभ्यास मटका गल गया, अज्ञान पर्दा फट गया।
विज्ञान अनुभव खुल गया, संसार से सो छुट गया॥

मन में नहीं विक्षेप है, नहिं बुद्धि में कुछ भ्रान्ति है।
चिन्ता नहीं है चित्त में, परिपूर्ण अक्षय शान्ति है।
कामादि तस्कर भग गये, कूड़ा गया, कर्कट गया।
अक्षय खजाना रह गया, संसार से सो छुट गया॥

सर्दी पड़े गर्मी पड़े, वर्षा झड़े तो वाह वा।
आँधी चले पानी पड़े, बिजली गिरे तो वाह वा॥
जो होय सो होता रहे, अपना नहिं कुछ घट गया।
ऐसा जिसे निश्चय भया, संसार से सो छुट गया॥

जंगल बुरा लगता नहीं, जंगल जिसे रुचता नहीं।
नहिं स्वर्ण लेने दौड़ता, है सर्प से बचता नहीं॥
जीना जिसे भाता नहीं, भय मृत्यु का है उठ गया।
सो धन्य है जग मन्य है, संसार से सो छुट गया।

नहिं शत्रु जिसका कोय है, नहिं मित्र जिसका कोय है।
स्व-स्वभाव के अनुसार सब व्यवहार जिसका होय है॥
बाहर सभी करता रहे है चित्त से सब हर गया।
मन स्वस्थ निर्मल शान्त है, संसार से सो छुट गया॥

यह पुरुष है, यह नारि है, ऐसा जिसे नहिं ज्ञान है।
सम हानि है, सम लाभ है, सम मान अरु अपमान है॥
मैं अन्य हूं, यह अन्य है, यह भेद जिसका मिट गया।
भोला ? वही हुशियार है, संसार से सो छुट गया॥

—श्री भोला बाबा

सुरासुर परिचय

लेखक—श्री उदासीन बाबा, पूना।

अधः पतन की ओर जन-समाज की प्रवृत्ति देखकर करुणा, दया से परिपूर्ण ऋषि-मुनि, अवतारी महापुरुष अपने प्रभाव शाली उपदेशों द्वारा सदा से ही चेताते आये हैं। तथा कर्मानुसार नाम-रूप देते आये हैं। युग युगान्तरों की यही परम्परा रही है। वर्तमान युग में धर्म की उपेक्षा, और हानि हो रही है। असुर भाव बढ़ रहा है। तामसी खान-पान, कर्म, व्यवहार, लोलुपता, कृपणता, अनीति, संग्रह आदि अनेक असुरभाव का दुर्व्यसन बढ़ता देखकर ही सन्तवाणीमें निर्गुण महारामायण ग्रंथका प्राकट्य हुआ है। इस ग्रंथ में असुर भावको ही रावणकी संज्ञा प्रदान की गई है। सुर भाव को ही राम कहा गया है। आदि ग्रन्थोंसे लेकर आज तक सर्वत्र सुरासुर भावको ही राम-रावणकी संज्ञा प्रदान की गई है। वेद वाणीभी इसी भावको प्रमाणित करती है। यथा-

"असुर्य्यानामतेलोकाऽअन्धेनतमसावृताः।
ताँस्तेत्प्रेत्याभिगच्छन्तियेकेचात्महनोजनादः॥
यजुर्वेद अ० ४० क० ३ मन्त्र १॥

वेद भगवान् असुर प्राणियोंका भाव रहनी, दुष्कर्म तथा उनका फल दिखलाते हुए कहते हैं—असुर, राक्षस, दैत्य, पिशाच ये सब तामसीजीव अन्धकारमें रहने वाले अन्धे हैं, अथवा नर्कगामी हैं। इन्हीं असुर भाव वाले प्राणियों को रावण संज्ञा देखकर निर्गुण रामायणमें इनका चरित्र वर्णन और वृत्तान्तका कथन किया गया है।

"यस्मिन्सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः।
तत्रको मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः॥
यजुर्वेद अ० ४० क० ७ मन्त्र १॥

अनेक जन्मोंके धर्मानुष्ठानका फल जब उदय हुआ तब जीव ब्रह्मका अभेद दर्शन होकर ब्रह्म राम रूप जीव बन जाता है। उपर्युक्त वेद वाणीके इसी भावको निर्गुण रामायणमें जीवको राम संज्ञा देकर प्रकाशित किया गया है। और कर्मोंके अनुसार फल वर्णन किया गया है। यहाँ वेदके दो मन्त्र प्रमाण रूपसे प्रस्तुत किये गये हैं। एक मंत्र असुर भाव वाले मनुष्य (रावण) का और दूसरा मंत्र ब्रह्मभाव वाले मनुष्य (राम) का प्रतिपादन करता है। वस्तुतः जीवराम (जीवात्मा) तो राम है ही केवल आचरण धारण करने की जरूरत है।

सुरासुर अथवा रामायणके प्रतिपादनमें भगवद्गीता भी प्रमाण है—

न मां दुष्कृतिनो मूढ़ाः प्रपद्यन्ते नराधमाः ।
माययापहृतज्ञाना आसुरं भावमाश्रिताः ।।७।१५।।

इस श्लोकमें चार दूषण वाले प्राणीको असुर अर्थात् राक्षस कहा गया है । १—धर्म मर्यादा रहित कर्म करने वाला । २—मनुष्योंमें नीच स्वभाव वाले जो जीवोंको हानि पहुँचाते हैं । ३—मूढ़ रावणकी तरह विद्या पढ़ पढ़ाकर भी नीच निषिद्ध कर्म वाले । ४—आसुरी स्वभाव को धारण करने वाले । सिद्ध हुआ कि मनुष्यों में भी राक्षस असुर अवश्य हैं। गीताके अध्याय १६ में विस्तारसे आसुरी सम्पत्ति और उनके चाल, चलन, गुण, कर्म, स्वभाव, अज्ञान, मूढ़ता, अहंकार, दर्पमद, ममता, नास्तिकता आदि दुर्गुणोंका वर्णन किया गया है ।

अब सुर भाव वाले जो परब्रह्म राम स्वरूप हैं उनका लक्षण बतलाते हैं ।

अहंकारंवलं दर्पं कामं क्रोधं परिग्रहम् ।
विमुच्य निर्ममः शान्तो ब्रह्म भूयाय कल्पते ।।
गीता अ० १८ श्लोक ५३ ।।

इस श्लोकके अनुसार कर्म करने वाले मनुष्य ब्रह्मस्वरूप ही हैं । कर्म क्या है सो दिखाते हैं—सर्व दुष्कर्मोंका मूल कारण अहंकारको त्यागै, तथा घमंड निषिद्ध काम इन्द्रियों की लोलुपता त्यागै । क्रोध ममता अथवा सर्व दुष्कर्म त्यागै । और शान्त चित्त वाला बनै, आत्म ज्ञानका सम्पादन करे; तत् त्वं अर्थात् ब्रह्म जीव एकता दृढ़ निश्चय करे । साधु सन्त वचनामृतमें पूर्ण विश्वास वेदान्त द्वारा करे सो निश्चय रामरूप ही है ।

ईश्वरः सर्व भूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति ।
भ्रामयन्सर्व भूतानि यन्त्रारूढानि मायया ।। अ० १८ श्लोक ६१ ।। के अनुसार सिद्ध हुआ कि सबके हृदयमें ईश्वर है । जब ईश्वर सर्वमें है तो सिद्ध हुआ कि सर्व विश्व परमात्मा ब्रह्म राम रूप ही है । अथवा प्राणी मात्रीमें ईश्वर होनेसे देवता, नर, नारी, पशु, पक्षी, कीड़े, पतंगे, मच्छर, मक्खी, वनस्पति या सभी परमात्मा राम ब्रह्म स्वरूप हैं । जैसे घरमें प्रकाश है तो घर प्रकाश वाला कहा जाता है तैसे घर रूपी शरीरमें परमात्मा ईश्वरका निवास है । तो सर्व शरीर ईश्वरके घर है तथा ईश्वर वाले हैं । जैसे घरमें प्रकाश होनेसे घर भी प्रकाश स्वरूप ही हो रहा है । तैसे शरीरमें ब्रह्म निवास होनेसे सब जीव घर सहित ब्रह्म रूप है ।

अथवा अन्वय व्यतिरेक करके प्राणी मात्र ब्रह्म रूप सिद्ध होते हैं । तभी तो सनातन हिन्दू समाजकी बुद्धि ब्रह्ममय होती है । नाना प्रकार की देव आदि मूर्ति तथा पहाड़ पत्थर, जल, अग्नि, पशु, पक्षी, वृक्ष, घास, कीड़े आदि पूजे जाते हैं । तो ब्रह्ममय जानकर ही ब्रह्मको पूजते हैं । हिन्दू समाज व्यापक दृष्टि रखता है । इससे हिन्दू समाज ही ब्रह्ममय दृष्टि वाला हो सकता है । दूसरा संकुचित दृष्टि वाला होनेसे ब्रह्मको केवल निर्गुण ही मानता है, हिन्दू समाज निर्गुण सगुण दोनों स्वरूप मानता है, इससे अन्य समाज एक अङ्गी हैं । जीव राम रूप है ही राम आचरणकी जरूरत है, विचार सागर देखिए—

दोहा—साक्षी ब्रह्म स्वरूप इक, नहीं भेदकी गंध।
रागद्वेष मति के धरम, तामें मानत अंध॥

अन्ध नाम अंधेरेमें चलने वाले वही असुर हैं। ब्रह्म रूप अहि ब्रह्म वित,
ताकी वाणी वेद।
भाषा अथवा संस्कृत, करत भेद भ्रम छेद॥

शुद्ध आचरण व्यवहार वाले ब्रह्म स्वरूप हैं। जीव राम रूप है। राम आचरणकी जरूरत है। आगे मात्रा शास्त्र देखें। "सहज वैरागी करे वैराग, माया मोहनी सकल त्याग।"

माया मोहनी, मायाका जो तमोगुण है, इस तमोगुणमें जा-जो मोहित हैं। वही नर अधम असुर हैं। "नानक पूता श्रीचन्द्र बोलै,
युक्ति पछानै तत्व परोलै।"

तत्व परोलै,, प्राणी मात्रके हृदय स्थलमें पिरोया है अर्थात भरा है। इस ब्रह्म तत्वको जानने वाला, मानने वाला, रहनी रहने वाला ब्रह्म स्वरूप है। (ब्रह्मविद् ब्रह्मैवभवति) जीव रामरूप है आचरणकी जरूरत है। मानस—

परद्रोही पर दार रत, पर धन पर अपवाद।
ते नर पामर पापमय, देह धरे मनु जाद॥
ईश्वर अंश जीव अविनाशी।
चेतन अमल सहज सुख रासी॥

यह जीव ईश्वर अंश होनेसे अविनाशी चेतन ब्रह्म है। जीव रामरूप है। आचरणकी जरूरत है। गुरु नानक देव :—

संतका निन्दक महा हत्यारा।
संत निन्दक परमेश्वर मारा॥

संत तथा धर्म द्रोही असुर हैं। परमेश्वर अवतार धारण करके असुर अधर्मियोंका संहार करता है। तथा नाश कर देता है।

धर्म धारण करनेवाले विचारवान, शीलवान, समदर्शी ज्ञानी ब्रह्म स्वरूप हैं। जीव राम रूप है। आचरणकी जरूरत है।

पापी भक्ति ना भावई, हरि चर्चा न सोहाय।
मक्खन चन्दन परि हरै, विगन्धे बैठे जाय॥

चन्दन रूपी शुभ गुणसे जो दूर है, सोई असुर (राक्षस) है।

"निराकार की आरसी, साधु ही की देह।
लखा चहे जो अलखको, इनहींमें लख लेह॥"

साधुका जो शरीर है सो दर्पण (मुकुट) है। निराकर जो ब्रह्म परमात्मा राम है सो इनमें प्रगट रमा है। जैसे सूर्य जलमें अपना आकार प्रगट दिखाता है। मलिन वस्तु मिट्टी, पत्थर दीवाल आदिमें अपना रूप नहीं दिखाता है। वैसे ही सन्तोंमें शुद्ध बुद्धि वाले धर्मात्मा भक्त लोग परमात्मा ब्रह्म रामको देखते हैं। यहाँ तक दो वर्गोंमें प्रमाण सहित मनुष्योंको दिखाया गया है। इससे यह सिद्ध हुआ कि सुर असुर (देवता राक्षस) दोनों मनुष्योंमें हैं। इसी प्रकार सन्तोंने देश-देशान्तर को भाव व्यक्त किए हैं। जिस-जिस को जानना हो तो सन्तों की शरण लेकर सुगमतासे जान सकता है। और विचार करके ब्रह्मरूप बननेकी कोशिश कर सकता है। जीव रामरूप है। आचरणकी जरूरत है।

जो यहाँ तक प्रमाण सहित सुर असुरकी व्याख्याकी गई है, सोई निर्गुण रामायणमें विस्तार सहित (राम रावण परमतत्व विचार)

नामक एक प्रकरण एक हजार चौपाइयोंसे संकलित है। जिसमें मन ही रावण है। मन की वृति विषयाकार वहिर्मुख होना ही मनके कुटुम्ब-परिवार हैं, जिसके द्वारा मन अशान्त दीन दुखी, शोकातुर, व्याकुल घवड़ाये रहते हैं। कनिष्ट, निसिद्ध, कल्पित, नानत्व, नीच भावनाएँ, लड़ाकू मनकी सहायक सेना हैं। जिस सेनाको देख-देख हर्षशोकमें मन डूवा रहता है।

मन और मनका कुटुम्ब तथा मनकी सेना इन तीनोंका वर्णन निर्गुण रामायणाङ्कमें विस्तार से प्रतिपादन किया गया है। मायासे पाँच तत्व बने है पाँचों तत्वोंके सतो अंशसे मन बना है। और रजो तमों गुणके अंशसे मनकी सेना तथा कुटुम्ब बना है। मन मायाका कार्य होनेसे मूल सहित मनका नाश रामरूपी जीवके पुरुषार्थसे होगा। क्योंकि जीव ब्रह्मका अंश है। ब्रह्म अंश होनेसे अविनाशी (नाशरहित) है। (ममैवांशो जीव लोके) इस गीता प्रमाणसे भी जीव ब्रह्मका अंश है। जैसे जलका फेन, बुदबुदा, तरंग, लहर सब जल ही जल है वैसे ही ब्रह्म-अंश होनेसे जीव ब्रह्म रामस्वरूप है। इसी अभिप्रायसे जीवको रामरूप वेदोक्त तथा अनुभव सिद्ध कहा गया है।

देश कल्याण कारक वृत्तियाँ रामके कुटुम्ब के समान है विवेक, वैराग, षट सम्पत्ति, मुमुक्षुता रामकी फौज है। इस निर्गुण रामायण का विशेषाङ्क परमानन्द सन्देश रूपमें इसी नवम्बरमें जनताके हस्तगत प्राप्त होगा। आशा है इस विशेषाङ्कसे जनतामें सुख शान्तिकी प्राप्ति होगी। इसी रामकी फौजको महात्मा गाँधीजी अपनाए थे। महात्मा गाँधीजीका लक्ष्य था भारतको रामराज्य जैसा बनाना और कुछ मिनिस्टरोंका लक्ष्य रामराज्य अभी भी बनाने का है। लेकिन हजारों वर्षकी भूखी-भारत जनता द्रव्य धनके संग्रहमें ही टूट पड़ी है। यदि कहीं सुधर्मसे या सनातन धर्म मर्यादा सन्तोष नीतिसे भारत-जनता टूट पड़ती तो अब भी प्रत्यक्ष सही रामराज्य जैसा ही भारत देश बन जाता। लेकिन जनता कनिष्ट प्रारब्ध होनेसे कनिष्ट कर्मोंमें ही फसी पड़ी है। अब क्या करना चाहिए, मिनिस्टर मंत्रियोंके हुकुम से आज भी जल्द रामराज्य हो सकता है। लेकिन मिनिस्टर लोग अपना आचरण स्वयं राम ऐसा बनावें तब उनका प्रभाव अच्छा पड़ेगा। वह हुकुम कैसा हो ? प्रान्त-प्रान्त, जिला-जिला, ग्राम-ग्राम, में एकता, सुधर्म, सन्तोष, सत्यता आदिका सत्संग द्वारा प्रचार हो। परन्तु राम आचरण धारण करनेवाले मनुष्योंकी बहुत जरूरत है। प्रजाका कर्त्तव्य है कि राजाको अपने तन, मन, धनसे एकता करके सहयोग देना। राजाका भी कर्तव्य है कि जनताको न्याय, नीति, दया, भावसे ही देखना जिस तरह रामको रामकी प्रजा और प्रजाको राम देखते थे। तभी सच्चा सुख स्वराज्य एवं राम राज्य हो सकता है। श्री प्रभु परमात्मा सबको सद्बुद्धि दे।

ॐ शान्ति ! शान्ति !! शान्ति !!!

'परमानन्द सन्देश' के विशेषांकके रूप में जो आगामी मास आपके कर-कमलोंमें सुशोभित होगा—

वेद-शास्त्रोंका सार—निर्गुण रामायण

लेखक—सूर्यदेव वर्मा, वाराणसी

⊙

प्रत्येक ग्रन्थका कोई न कोई प्रधान उद्देश्य रहता है, उसमें एक विशेष सन्देश निहित होता है—लेखक महोदयका प्रयत्न उसी उद्देश्यकी ओर पाठकोंका ध्यान आकृष्ट करने के लिये होता है अन्य और जितनी बातें कही जाती हैं वे सब उसीकी पुष्टीके लिये होती हैं। निर्गुण रामायणके रचइता योगी राज ब्रह्मनिष्ठ महात्मा मुनिवर्य १००८ बाबा श्री शारदाराम महाराज, रामटेकड़ो, पूना वाले हैं। यह ग्रंथ गीता, रामायण, उपनिषद तथा श्रुति स्मृतिके अन्तर्गत है। इसमें जीव ब्रम्हकी एकता, प्रपन्च का मिथ्यात्व तथा अद्वैत सिद्धान्तका सन्तवाणीमें निरूपण मुनिवर्य श्री बाबाजीने सर्व साधारणके समझनेके लिये सरल भाषामें बड़े रोचक ढंगसे किया है। इस ग्रन्थकी गणना संसारके उत्कृष्ट ग्रन्थोंमें यदिकी जाय तो यह स्थान उसके लिये उपयुक्त ही है। जिस प्रकार गीताके विषयमें यह प्रसिद्ध है कि "गीता सुगीता कर्तव्या किमन्यैः शास्त्र विस्तरैः", उसी प्रकार अद्वैत बोधके लिये यह दृढ़तापूर्वक कहा जा सकता है कि एक मात्र इस निर्गुण रामायणका सावधानतापूर्वक अनुशीलन मुमुक्षुओंको परम पदकी प्राप्ति करा सकता है—इस उद्देश्यकी पूर्तिके लिये ही इस ग्रंथकी रचना पूज्यनीय मुनिवर योगीराज बाबा शारदारामजीने की है—सम्पूर्ण ग्रंथमें भगवानके स्वरूप, उनकी शक्ति, उनकी दया, तथा भक्त वत्सलता आदिका वर्णन बड़े सुन्दर तथा सर्व शास्त्र सम्मत किया गया है।

निर्गुण रामायणके गूढ़ अर्थ तथा अद्वैत बोध की सिद्धिके लिये परमानन्द संदेशके विद्वान सम्पादक श्रीभद्रसेनजीके हम सब बड़े आभारी हैं क्योंकि उन्होंने बड़े लगन तथा अथक परिश्रमसे निर्गुण रामायणके प्रत्येक पदकी व्याख्या बड़े मार्मिक तथा रोचक ढंगसे सर्वसाधारणके बोधके लिये करके ग्रंथकी महिमा तथा उपयोगिताको विशेषरूप देकर "गागरमें सागर" भरनेकी कहावत चिरतार्थ कर दी है—इसमें सन्देह नहीं कि व्याख्यामें समग्र वेदान्त शास्त्रका निचोड़ बहुत ही सरल एवं संक्षिप्त भाषामें आ गया है।

ग्रंथकी उपयोगिताके विषयमें इतना ही कहना यथेष्ट होगा कि जो साधक सावधानता पूर्वक इस अलौकिक ग्रंथका अध्ययन करेगा उसको निसन्देह भगवानमें अनुराग हो जायगा, जैसा कि भगवानने कहा है "ये भजन्ति तु मां भक्तया मयि ते तेषु चाप्यहम्"—"तेषां नित्याभि युक्तानां योग क्षेमं वहाम्यहम्, तेषा महं समुद्धर्ता मृत्यु संसार सागरात्"—अर्थात दुखकी अत्यन्त निवृति और निरतिशय सुखकी प्राप्ति होती है।

हम चाहते हैं सुख, हम चाहते हैं शान्ति—पर वही जो नित्य हो, अमिट हो, टिकाऊ हो—

(शेष पृष्ठ १५ में देखिये)

कहानी—

भगवानकी कृपा

लेखक—श्री मुरलीधर दासजी

⊙

पूर्व जन्मके संस्कारवश मनुष्यका जन्म होता है। यह शास्त्रोंका लेख अक्षरशः सत्य है। जैसा जिसका कर्म भोग रहता है वैसा ही जीवको कुल परिवार माता पिता जाति वर्णकी प्राप्ति होती है। मनुष्य शरीर प्राप्त होने पर यदि जीव सच्चा पुरुषार्थ करे तो निःसंदेह अनेक जन्मोंका कार्य एक ही जन्ममें सिद्ध हो जाता है। इसमें भगवानकी कृपा और अपना पुरुषार्थ ही प्रधान है। क्योंकि जीव भोगमें परतन्त्र होते हुए भी कर्म करनेमें स्वतन्त्र है। यह उसकी इच्छा पर है कि भजन करे अथवा निषिद्ध कर्मोंका सम्पादन करे। कठिन पुरुषार्थके द्वारा भक्त लोग भगवानको भी अपने प्रेम पाशमें बाँध लेते हैं। सत्य स्वरूप परमात्माके चरणोदकका नित्य पान अव्यर्थ प्रभाव रखता है।

अकाल मृत्यु हरणं सर्व व्याधि विनाशनम्।
विष्णु पादोदकं पीत्वा पुनर्जन्म न विद्यते॥

इस पर पुराणकी एक कथा प्रसिद्ध है। एक हरिशरण नामक ब्राह्मण पूर्व जन्मके संस्कार वश भगवद्भक्त कुलमें जन्म लेकर विद्या बुद्धि और धर्माचरणसे सम्पन्न थे। वर्तमान जन्ममें उनका स्वयंका पुरुषार्थ भी महान था। निष्काम कर्म, प्रभुकी भक्ति, प्राणीमात्रकी सेवा, शालिग्रामका पूजन प्रभुके स्वरूपका चिन्तन मनन और ध्यान ही उनकी दिनचर्याके प्रमुख अंग थे। जीविका निर्वाहके लिये प्रभु कृपासे जो अपने आप मिल जाय उसीमें सन्तुष्ट और प्रसन्न रहना उनका भूषण था। प्रभुके निमित्त किये गये उपर्युक्त पुरुषार्थके अचिंत्य प्रभावसे हरिशरणकी हृदय ग्रन्थि खुल गई।

प्रारब्ध वश हरिशरणका जीवन चक्र चल रहा था। एक बार वे किसी कार्यसे रात्रिमें ३ बजे उठकर कहीं यात्रा पर जा रहे थे। मार्गके घने जंगलमें सात आदमियोंने उन्हें घेर लिया।

हरिशरण ने पूछा—"तुम लोग क्या चाहते हो।"

डाकुओंने कहा—"हम सब तुम्हें मारकर बलि चढ़ाना चाहते हैं।"

हरिशरण भगवद्भक्त और विवेकी पुरुष थे। वे भयभीत नहीं हुए। उन्होंने विचार किया—धीरज और धर्मकी ऐसे ही समय परीक्षा होती है। ये लोग मुझे मारना चाहते हैं, यह दयालु प्रभुकी ही इच्छा है। इसीमें मेरा कल्याण है। उन्होंने स्पष्ट रूपसे कहा—"मुझे आप

लोगोंकी आज्ञा शिरोधार्य है। मरने के पूर्व एक मेरी प्रार्थना है।

"कहो क्या है ?" एक डाकूने कहा।

प्रातःकाल होनेको है। यह पूजन वंदन का समय है। आज तक मेरा यह नियम कभी भंग नहीं हुआ है। मैं चाहता हूँ कि उस पास के कूएँ पर नित्य कर्म करके ठाकुर जी का चरणोदक पान कर लूँ। इसमें मुश्किलसे आध घड़ीका समय लगेगा। इसके बाद आप प्रसन्नता पूर्वक मेरा वध कीजिए।

डाकुओं ने ब्राह्मणकी अन्तिम प्रार्थना स्वीकार कर ली। हरिशरण नित्य क्रियासे शीघ्रतापूर्वक निवृत्त होकर ठाकुरजीको एक कटोरी में रखकर आराधन पूजनके बाद ध्यान करने लगे। इसी समय उन्हें शास्त्रका यह वचन स्मरण हो आया कि नित्य श्रद्धाभक्ति पूर्वक भगवानका चरणोदक पान करने वालेकी अकाल मृत्यु नहीं होती है।

अनुनय विनयके साथ हरिशरणने प्रार्थना के स्वरमें कहा—'प्रभु ! आपके चरणामृतका ऐसा प्रभाव है कि अकाल मृत्यु नहीं होती परन्तु मेरी हो रही है। इससे सर्व साधारणको शास्त्रोंके लेख और आपके न्याय पर सन्देह हो सकता है ?"

उसी समय कटोरीकी मूर्तिमें भगवानका प्रतिबिम्ब प्रकट हो गया। भगवान बोले—हे भगत ! यह सब तुम्हारे प्रारब्धके कारण हो रहा है। पूर्व जन्ममें तुमने सात व्यक्तियोंकी हत्या की थी। इस जन्ममें तुम्हारे पुरुषार्थ और भक्तिसे मैंने प्रसन्न होकर सात जन्मोंमें पूरा होने वाले प्रारब्धको एक जन्ममें ही समाप्त करनेका यत्न किया है। तुम्हारे सातो शत्रुओं को एकत्र कर दिया है ताकि तुम्हारे प्रारब्धका भोग समाप्त हो जाय। इससे अधिक मैं अपने भक्तके लिये और क्या कर सकता हूँ।

अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्।

प्रारब्ध कर्मोंके फल भोग लेनेके बाद अब तुम्हारा इस मृत्यु लोकमें पुनर्जन्म नहीं होगा। ये कर्म शेष रह जाते तो तुम्हें पुनः जन्म धारण करना पड़ता। जो मेरे एक निष्ठ भक्तके लिये सम्भव नहीं है।" इतना कहकर भगवान अन्तर्ध्यान हो गए।

ब्राह्मण भगवानकी मूर्तिसे बात चीत कर रहे हैं यह देखकर डाकुओं (पूर्व जन्मके शत्रुओं) का हृदय बदल गया। ब्राह्मणको महात्मा जान कर वे अपने दुष्कर्म पर पश्चाताप करने लगे। और ब्राह्मणके शरणागत होकर स्वयं भी भगवद् भक्त हो गये। भगवान और उनके भक्तोंकी लीला निराली है।

* आपका सहयोग *

हम अपने कृपालु सदस्योंसे प्रार्थना करते हैं कि नव वर्षमें 'परमानन्द सन्देश' के कम से कम दो नये सदस्य अवश्य बनाने की कृपा करें। आपका थोड़ा सहयोग 'परमान्द सन्देश' को स्थायी बनानेमें सहायक सिद्ध होगा।—सम्पादक

नाम-साधना पर एक दृष्टि

(जयकान्त झा)

पापानलस्य दीप्तस्य मा कुर्वन्तु भयं नराः ।
गोविन्दनाममेघौघैर्नश्यते नीर बिन्दुभिः ॥
(गरुड़ पुराण)

"हे मनुष्य ! प्रदीप्त पापाग्निको देखकर भय मत करो । गोविन्दनामरूप मेघोंके जल विन्दुओंसे इसका नाश हो जायगा ।"

हम अटल, अखंड और आत्यन्तिक सुख चाहते हैं, परन्तु सुखकी मूलभित्ति धर्मका सर्वनाश करने पर तुले हुए हैं । ऐसी स्थितिमें सुखके स्वप्नसे भी जगतको निराश रहना पड़ता है । हमारी इस दुर्दशाको महापुरुषों और भगवद्भक्तोंने पहलेसे ही जान लिया था, इसी से उन्होंने दया परवश हो हमारे लिए एक ऐसा उपाय बतलाया जो इच्छा करने पर सहज ही में काममें लाया जा सकता है, परन्तु जिसका वह महान फल होता है जो पूर्वकालमें बड़े-बड़े यज्ञ, तप और दानसे भी नहीं होता था । वह है श्री हरिनामका जप, कीर्त्तन और स्मरण । वेदान्त दर्शनके निर्माता भगवान वेदव्यास रचित भागवतमें ज्ञानि श्रेष्ठ शुकदेवजी महाराज शीघ्र ही मृत्युको आलिङ्गन करनेके लिए तैयार बैठे हुए राजा परीक्षितसे पुकारकर कहते हैं—

कलेर्दोषनिधे राजन्नास्ति, ह्येको महान् गुणः ।
कीर्त्तनादेव कृष्णस्य मुक्तसंगः परं व्रजेत् ॥
कृते यद् ध्यायतो विष्णुं त्रेतायां यजतो मखैः ।
द्वापरे परिचर्यायां कलौ तद्धरिकीर्त्तनात् ॥

"हे राजन् ! इस दोषोंसे भरे कलियुगमें एक महान गुण यह है कि केवल श्रीकृष्णके नाम-कीर्त्तनसे ही मनुष्य कर्म-बन्धनसे मुक्त होकर परमात्माको प्राप्तकर सकता है । सतयुगमें ध्यानसे, त्रेतामें यज्ञोंसे और द्वापरमें परिचर्यासे जो पद प्राप्त होता था वही कलियुगमें केवल श्री हरिनाम कीर्त्तनसे प्राप्त होता है ।"

भगवन्नाममें सर्वार्थ-साधनकी क्षमता निहित है । श्रद्धा, भक्ति और ऐकान्तिक निष्ठा के साथ उस नामका जप करते-करते क्षमताका विकास होता है । भोजन करते समय जैसे ध्यान रहता है व्यंजनकी ओर, स्वाद की ओर, किन्तु प्रत्येक ग्रासके साथ ही साथ क्षुधानाश, देह और इन्द्रियोंकी शक्ति-वृद्धि तथा स्वादका सुख अपने आप मिलता जाता है, उसी प्रकार नाम-जपके समय चित्त तो संलग्न रहता है नाम-नामीके अभिन्न स्वरूप मंत्रमें; किन्तु प्रतिवारके नामोच्चारणके साथ ही साथ अलक्षित रूपमें अनित्य विषय-भोग-वैराग्य,

नित्य सत्य-चिदानन्द स्वरूप मंत्रात्मा भगवान में प्रेमभक्ति एवं सर्वार्थ सिद्धिमयी भगवदनुभूति और तज्जनित अतीन्द्रिय सुख हृदयके अन्दर विकास पाता रहता है। भोजनके फल-स्वरुप ग्रास-ग्रासमें पुष्टि और क्षुधा-निवृत्ति इत्यादिके सम्पन्न होते रहने पर भी जैसे वे प्रति ग्रासमें दिखाई नहीं देते—अनेक ग्रासोंका फल संचित होने पर ही पता लगता, उसी प्रकार नाम-जप के अत्याश्चर्यजनक फलको भी प्रतिबारके नामोच्चारणके साथ साथ अस्वच्छ बुद्धि साधक समझनेमें समर्थ नहीं होता। दीर्घकालके निरन्तर साधनसे अन्तःकरणमें संचित आध्यात्मिक सम्पत्ति अपनी ज्योतिसे ऊपरी मलको दग्ध करके बुद्धि और हृदयके सम्मुख जब प्रकाशित होती है तभी इसका अनुभव होता है। बुद्धि और हृदय जब स्वच्छ हो जाते हैं, तभी नामके भीतर निहित अचिन्त्य भाव सम्पत्तिका प्रति बारके नाम स्मरणमात्रमें आस्वाद प्राप्त होने लगता है।

नाममें अक्षर बुद्धि रखना शास्त्रोंमें महान अपराध माना गया है। नाम प्राणवान् होता है और होता है आध्यात्मिक तेजका आधार। साधक जितना ही दिन पर दिन, क्षण पर क्षण नामकी सेवा करता रहता है, उतना ही नामका माहात्म्य साधकके विशोधित अन्तःकरणमें प्रकाशित होता रहता है एवं नाम निहित शक्ति साधकके अन्दर ज्ञान, भाव, रसादि ऐश्वर्य स्वयं प्रकट करके साधकको कृतार्थ कर देती है। साधकको सर्वांगीण कल्याण पर पहुँचानेके लिए जिस जिस वस्तुका प्रयोजन होता है सभी नाम साधनासे सुलभ हो जाता है। शास्त्रीय विचारके द्वारा नाम-तत्वको हृदयंगम करके उसकी अचिन्त्य शक्तिमें अविचल विश्वास रखना आवश्यक होता है। ऐसी धारणा बनाये रखनी चाहिए कि नाम और नामी दोनों एक मूर्ति हो नाम रुप चिन्मय देह धारण करके अपनी कृपा से हमारे हृदयमें विराजमान हैं, अतः सर्वदा सतर्क, अप्रमत्त और भक्तिपूत चित्त होकर उनकी सेवामें सम्पूर्ण शक्तियोंका लगाना ही हमारा कर्तव्य है। नित्य-निरन्तर प्रेमके साथ नाम-स्मरण, चिन्तन एवं निदिध्यासन ही हमारा अभीष्ट होना चाहिए। यही नाम-साधना है। इसीसे सर्वार्थ सिद्धि होती है।

"जपात्सिद्धिर्जपात्सिद्धिर्जपात्सिद्धिर्न संशयः।"

नामके उच्चारण या स्मरण मात्रसे नामी का स्वरूप चित्तपट पर उदित होता है। अतः नामका अर्थ है नामी। नामीके स्वरूपके साथ जितना घनिष्ठ परिचय संस्थापित होता है, नामका अर्थ उतना ही स्पष्ट होता जाता है। नामका विश्लेषण करके उसके प्रत्येक अक्षर और प्रत्येक मात्राके अर्थ एवं उनकी समष्टिके शाब्दिक अर्थकी शब्दशास्त्र और युक्ति तर्ककी सहायतासे बुद्धि द्वारा यथासम्भव निपुणताके साथ पर्यालोचना करने पर भी नामके वास्तविक अर्थका यथार्थ ज्ञान नहीं होता। किसी एक नये मनुष्यसे भेंट होने पर, उसके सम्पूर्ण अंग-प्रत्यंगोंके आकार-सन्निवेश और

गति विधिका विशेष रूपसे निरीक्षण करनेसे, अथवा बाहरसे उसकी कितनी ही बातें सुनकर या कार्योंको देखकर या उसकी वंशावलीका परिचय जाननेसे भी उस मनुष्यको यथार्थ रूप से जाना या पहिचाना नहीं जाता। मनुष्यके साथ नाना प्रकारकी अवस्थाओंमें बार-बार संग करते-करते उसके कार्य-कलाप, वार्तालाप, हाव-भाव इत्यादिके भीतरसे उसके अन्तर्जीवनकी प्रकृतिके सम्बन्धमें जितना घनिष्ठ परिचय प्राप्त होता है, मनुष्यकी चिन्ताधारा, भावधारा, कर्म-धारा, ज्ञान-विज्ञान, शक्ति-सामर्थ्य और सुख-दुःख इत्यादिके साथ जितना योग संस्थापित होता है, उतना ही उसको पहचाना जाता है, समझा जाता है और उसके साथ एक सम्बन्ध प्रतिष्ठित हो जाता है। उसी प्रकार नाम-देहके अंग-प्रत्यंगके सन्निवेशको बारीकीसे खोजने पर भी उसके सम्बन्धमें कोई वास्तविक ज्ञान प्राप्त नहीं होता और तत्वतः नामका अर्थ अज्ञात ही रहता है। नामके वास्तविक अर्थका यथार्थ परिचय प्राप्त करनेके लिए नित्य-निरंतर विचार शील चित्तसे नामकी सेवा करना आवश्यक है। श्रद्धा, भक्ति और एकाग्रताके साथ विचार पूर्वक नामका संग और सेवा करते करते—रूप में अवतीर्ण भगवानका स्मरण, चिन्तन और कीर्त्तन करते करते—देह, मन और बुद्धि जिसकी निर्मल, विक्षेप-रहित एवं प्रेम रस सिक्त होगी, उतना ही नामके अन्तर्जीवनके साथ साधकका परिचय होगा, उतना ही नाम और नामीके बीच का प्राकृतिक व्यवधान तिरोहित होगा, नामके भीतर भगवानका प्रकाश भी उतना ही समुज्वल होगा और विश्वगुरु भगवान अपने सम्पूर्ण ऐश्वर्यके साथ नामके भीतरसे अपनेको प्रकट करके साधकको कृतार्थ कर देंगे और तभी नाम का सम्यक् अर्थ जाना जायगा। नामके अर्थको समझ सकना या नामी भगवानके स्वरुपकी उपलब्धि कर लेना एक ही बात है। भगवान को पहचानना ही नामको पहचानना है, भगवान के साथ परिचय होना ही नामसे परिचय होना है। सुदृढ़ विश्वास और अनुरागके साथ नाम-साधन करते करते जितनी ही नामकी अर्थोप-लब्धि होगी, अर्थात् नामके साथ परिचय होगा, उतना ही नामका प्रत्येक अक्षर, प्रत्येक मात्रा चिन्मय जान पड़ेगी एवं नाम-स्मरण मात्रसे चित्त भगवानमें समाहित हो जायगा। अतः साधकको आरम्भसे ही 'नाम' को चिन्मय, अचिन्त्य शक्ति सम्पन्न और भगवानके साथ स्वरुपतः अभिन्न मानकर विश्वास रखना चाहिए।

निरन्तर नामका—जप ही प्रकृष्ट साधन है। खाते, सोते, बात करते, रास्ता चलते, काम करते—सर्वथा सभी अवस्थाओंमें नाम-स्मरण की चेष्टा बनी रहने पर शीघ्र-शीघ्र उन्नति होती चली जाती है। प्रत्येक श्वास-प्रश्वासके साथ नाम-जप करना ही श्रेयस्कर है। ऐसा विश्वास रखना चाहिए कि श्वास लेनेके साथ साथ अचिन्त्यशक्ति समन्वित नाम भीतर प्रवेश करके शरीर, इन्द्रिय और मनके प्रत्येक रन्ध्र रन्ध्रमें प्रवेश कर जाता है एवं सम्पूर्ण सत्ताको भगवद् भावभावित और भगवद्भक्ति रससे प्लावित कर देता है। नाम-जप इस प्रकार

करना आवश्यक है कि नाम-जप करनेमें किसी विशेष आयोजन या प्रयत्नकी आवश्यकता न पड़े—अपने अनजानमें भी मन स्वभावसे ही नाम-जपमें लगा रहे। नामकी शक्तिसे मनका धर्म बदल जाता है—नित्य-निरंतर भगवद्भावाविष्ट होकर रहना ही उसका स्वभाव बन जाता है। शरीर यदि अपवित्र हो, इन्द्रियाँ यदि चंचल रहें, मन यदि कुत्सित चिन्तामें डूबा हो, तो भी नामको नहीं छोड़ना चाहिए। नामको किसी प्रकार अपवित्र नहीं किया जा सकता, नामका महात्म्य किसी प्रकार नष्ट नहीं किया जा सकता, नाम नित्य शुद्ध, नित्यमुक्त, महाशक्तिका आधार है। सभी अवस्थाओंमें नाम का संग करते करते, नाम ही देहेन्द्रिय-मन-बुद्धि की पवित्रता, स्थिरता और आत्मनिष्ठता संपादन करके अपने स्वरूपको प्रकाशित करेगा। नित्य निरन्तर नाम-साधनका अभ्यास करनेसे और किसी साधनका प्रयोजन नहीं होता, किसी शक्ति या प्रक्रियाकी सहायता लेनेकी आवश्यकता नहीं होती।

इस प्रकार ऐकान्तिक निष्ठा और अनुराग के साथ नाम-जप करते करते प्राणका कार्य अपने आप नियमित हो जाता है, चित्त नामानन्द रसके आकर्षणसे विषय-विमुख होकर भगवत्स्वरुपमें धारणा करनेकी योग्यता प्राप्त कर लेता है एवं क्रमशः भगवानमें निश्चला निष्काम भक्ति प्राप्त कर लेता है। अतः ऐसे सुगम एवं सर्वश्रेष्ठ साधनके द्वारा ही हमें अपना जीवन कृतार्थ करना अभीष्ट है।

॥ हरि ओम् तत्सत् ॥

(शेष पृष्ठ ६ कालम दो का शेष)

ऐसे सुख और शान्तिका केन्द्र सर्वाधिष्ठान भगवान सच्चिदानन्द राम हैं परन्तु यह जीव जो उसका निज स्वरूप सर्वात्मा सच्चिदानन्द राम है अनादिकालसे भूला हुआ है और रज्जु सर्पवत मिथ्या जगतमें जो वास्तवमें दुख रूप है उसमें सुख तथा नित्य बुद्धि करके जन्मसे लेकर मरणपर्यन्त संसारको बढ़ानेमें ही लगा रहता है और ८४ लक्षयोनियोंमें बराबर घूमा करता है।

परन्तु यह सम्भव कब होगा जब साधक भगवान तथा अपने स्वरूपको जाननेका अधिकारी होगा। शास्त्र कहता है वे ही अधिकारी हैं जिनके अंतःकरणके तीन दोष मल, विक्षेप, आवारण दूर हो गए हैं—मल और विक्षेपके दूर होने पर विवेक, वैराग्य, षट सम्पत्ति और मुमुक्षताके उदय होने पर ही आवरण दूर हो सकता है—विवेक वह है जिससे हम समझ लें कि आत्मा अविनाशी और क्रिया रहित है और जगत नाशवान तथा विकारी है—जब तक ऐसा विवेक न जाग्रत होगा तब तक वैराग्य आदिका धारण करना सम्भव नहीं है—विवेक ही सब साधनका मूल है जब तक हम अच्छी तरह मनमें दृढ़ न कर लें कि आत्मा अविनाशी और सुख दुखसे परे हैं तथा संसार स्वप्न मात्र है तब तक संसारके भोग्य पदार्थोंका त्याग न होगा—अतः हमको सर्व प्रथम विवेकको जाग्रत करनेके लिए सत्संग करना चाहिए। जैसे रोगकी निवृत्तिके लिए औषध आवश्यक है वैसे ही भवरोग नाशके लिए सत्संगरूपी औषध परम आवश्यक है—

* हरि ओमतत्सत् *

भक्तियोग का एक अपूर्व मौलिक अप्रकाशित ग्रन्थ जो 'परमानन्द सन्देश' में प्रथम बार धारावाहिक रूप से प्रकाशित हो रहा है।

⊙

❀ श्यामसुन्दर कृत ❀

कृष्णचरित-मानस

उपोद्घात

⊙

बीजं विश्वतरोर्विवेक-जलधिं वैराग्य-मूलं दृढं,
सत्य-ज्ञान-सुखाश्रयं श्रुति-मुखं योगैकगम्यं विभुम्।
मायातीतमयं समायिकवरं वाणीपरं केवलं,
गो-गोपी-मुनि-जीवनं बुध-गुरुं शान्तं भजे केशवम् ।।१।।

ज्ञानानन्द - रसाब्धि-पूर्ण - मधुराकारोधरां पोषयन्,
योगीशं मदयन् महामुनिजनं सन्तोषयन् मानसम्।
कारुण्यञ्च विकीर्णयन् सुहृदये श्यामातटे श्यामलो,
योगेशो वितनोतु निर्मलमतिं भक्त–प्रियो माधवः ।।२।।

सूक्ष्मासाक्षर - कोमलामलरतिं वंशीध्वनिं दीपिका,
व्यासान्तःकरणे कुचूरि-कुलधारां रोधिका चिन्मया।
साजाह्लादिनिदिका-शक्तिसहजा नित्यापराराधिका,
सोऽहं सो हरिवृत्तिका सुफलदा ब्रह्मात्मिकालम्बिनी ।।३।।

यो देवलोकसदलो सबलो लयेशौ,
लालित्य-लील-ललनावलि-लीननित्यः।
गोलोक - धाम - धवलाकृति - गोप - गोपी-
राधाधिपेशभगवान् भव मानसं मे ।।४।।

राधा कृष्णौ रसासीनौ गुणाङ्कवार - धारिणौ ।
वृन्दारण्ये समालीनौ वन्दे तौ विश्वरूपिणौ ॥५॥

वेदागमादि - सद्ग्रन्थ - विचार-सारं,
सङ्गृह्य कृष्ण चरितं भरितं मुदाय ।
प्रेम्णा विनोद मनसा सुखमेतु विज्ञः,
कोप्येव मोहन कथां विशृणोति शुक्तः ॥६॥

भाषा

शि०—अयोध्या वा काशी हरिपुर-विलासी न मथुरा,
नहीं काञ्ची-माया हृदय-रूचि-साची मदन भी ।
प्रभु-क्रीडा-वृन्दावन रमण-योग्या न यमुना,
करे वंशी माथे मुकुट छवि भासे निश दिने ॥१॥

नगों में नागों में कुसुम शयनों में धरणिमें,
लता में लोष्ठो में ललित ललनामें भवन में ।
तृणोंमें कोणोंमें रमणतलमें वा समरमें,
गुणीमें मूर्खोंमें मुकुट - छवि - वंशीधर भजूँ ॥२॥

सदा ज्योति ध्यावें विपिन-गिरि योगी यतनसे,
भजे ज्ञानी ध्यानी मगन-मनमानी कुशलसे ।
रखें भस्में कण्ठी शिर गल गिने नाम मनसे,
हमें कालिन्दीके तट वसि बिलासी हृदि बसे ॥३॥

शशी हों वा तारा प्रकृति हरिताली कुसुम हो,
प्रभा-नक्षत्रोंका कमल पटलाली ललित हो ।
समीरोद्यानोंका सुरभित सुखामय पवन हो,
समीक्षावा शिक्षा मुकुट धर दीक्षा हृदि वशे ॥४॥

कृपापारावारायतिवर उदारा हर लसे,
तुषाराली धारा धवल नवलाकार तट में ।
सुमेरुरत्नोंका वरण सहसा भी सुलभ हो,
रुची राँची साँची दिवस निशि में श्याम छवि हो ॥५॥

विपक्षी वा पक्षी बसुधर बली भी नृपति हो,
कला ज्ञानी क्यों ना भुवन यश शाली पुरुष हो ।

सुरेन्द्राली पाली विविध कुलशाली कुपति हो,
हमें श्यामा श्यामा मुकुलित सुधामा हृदि बसे ॥६॥

शा०—मायाधीन समस्त विश्व जिनके ब्रह्मादि देवासुरें,
जानेसे जिनके असत्य सब हैं सर्प यथा जोरमें ।
तारेंगे चरणारविन्द तिनके नीराब्धि संसार से,
बन्दौं मैं गत शेष कारण गुरु गोविन्द गोपीपति ॥७॥

नाना शास्त्र-पुराण वेद-इतिहास-स्मृतियाँ तन्त्र भी,
धारावाहिकसे पुकार कहते धर्म-प्रभू सत्य हैं ।
श्रेष्टाचार-विचार-सार-विदिता-मुक्ति प्रभु ज्ञानासे,
वे सर्वेश्वर-कृष्णचन्द्र चितमें रात्रि दिवं शोभते ॥८॥

चिन्ता चूरि बनाय धूरि धरती चित्तोर्वराको किया,
बोया कृष्ण चरित्र बीज विनिके उगी कथा मालती ।
नाना छन्द-रसान्विता सुवनिता लंकार-भाषा लसी,
आनन्दावलिकी लताङ्ग ललिता श्यामातुमारी हरि ॥९॥

दोहा—चित सदोष निर्दोष रस ध्वनित सन्धि-गुण-नाम ।
सालंकार विचार-रत लज्जित श्याम सुख धाम ॥१०॥

चूनि चूनि सद्ग्रन्थ मत सुनि सुनि गुरु उपदेश ।
शक्ति पात वश कृष्णका लिखहुँ विमल सन्देश ॥११॥

निज-कर-सज्जित कुसुमकी माला लिन्हि बनाय ।
वृन्दाविपिन-विलासिको अर्पित किन्हीं लाय ॥१२॥

आलोचक लखि ग्रन्थिको करैं दोष गुण-गान ।
कहीं समालोचक लखे मम समान मति जान ॥१३॥

विष्णु रूप गणपति गुण गाऊँ । मङ्गल-मूल-शान्त चित पाऊँ ।
मोद करें मोदक फल दाता । ऋद्धि सिद्धि सहचरी विधाता ।
आशु तोष-गिरिजा रुचि गाऊँ । यह निर्विघ्न कथा बतलाऊँ ।
शिव प्रसाद हरि कथा सुहाई । दुष्ट कालमें मम रुचि आई ॥१॥

राधाराध्य कृष्ण भव-हारी । भक्त-हृदय प्रकटहि साकारी ।
मधुकर कृष्ण नाम रस राजा । भक्ति योगवश स्वादु समाजा ।

शरणाद सुखद प्रेमके भूखा। सहज स्वभाव कृष्ण नहिं रूखा।
प्रेम विवश शरणागत होई। भव बन्धन काटहि नर कोई ॥२॥
दोहा—पत्र पुष्प फल मूलके प्रेम पियासु श्याम।
चित अनन्य करि देखि लो मधुर कान्ति घनश्याम ॥५॥
मा०—अमल विपुल लीला कृष्णकी ध्यान लावे,
चित वश करि जाने निर्गुणाकार वृत्ति।
प्रकट हि मुरली के निर्मलाकार नादें,
श्रवण करत नादोंरो महाज्ञान नाशे ॥९॥
मैं लम्पट चित चोर अनारी। गुरु प्रसाद हरि लखा अगारी।
सो गुरु मोद भरे अभिबन्दा। हृदय पटलपर हरि गोविन्दा।
निगमागम स्वरूप दर्शाया। अर्द्धमात्र दर्शन करवाया।
शब्दसे अर्थ प्रकट नहिं पूरा। हो संकेत विवेक अधूरा ॥३॥
करत विवेचन पण्डित थाके। शब्द जाल कुछ अर्थ न पाके।
अर्थ टटोलत भाषण करहीं। जन मन मोहि मोहतल परहीं।
कहत वने नहीं सुनो सो कैसे। अनुभव गम्य पणक रस जैसे।
कहत चलूँ बतलाय न पाऊँ। प्रभु-प्रताप जस रुचि तस गाऊँ ॥४॥
सरस सुमञ्जुल सुषद सुवानी। परिणत परा वैखरी आनी।
सपद वाक्य प्रमाण विधारी। परावरीण कृष्ण रुचि कारी॥
लखत ललित लघु गुरुतम भासा। चन्द्राह्लाद कृष्ण छवि बासा।
स्थिर चञ्चल-विहीन चित जोई। निज स्वभाव त्यागा तब सोई ॥५॥
दो०—कृष्ण लखा मैं सामने हरि-मैं रहा न कोय।
सुख-दुःख हीन प्रकाश विच-लीन हुआ रति सोय। ६॥
वं०—आनन्द-पूर्ण हरि-धाम तभी सुहाया,
कोई न अन्य मुझको क्षण भारत आया।
श्यामाब्धि मध्य अवगाहन नित्य पाया,
श्यामानुकूल विरहा हृदये समाया ॥१०॥
मान सरोवर एक बनाया। रुचिर सोपान मनोहर लाया।
उपरि प्रथम चौपाई दोहा। संस्कृत पद्य अधस्तल सोहा।
सोरठा विच विच कहीं सवैया। स्तुति सचित्र जस मोहन गैया।
उतरि जलाशय कमल लगाया। षड्ग्रन्थीमें बंधे बधाया ॥६॥

मूलाधार चतुर दल सुन्दर। पृथिवी तत्त्व समीप लखो वर।
स्वाधिष्ठान नीरमें आई। षड्दल लखो चित लाई।
मणिपूरक तव तेज समाना। दशदल कमल अमल छवि बाना।
वात अनाहत कमल अगारे। तहाँ अष्टदल सुरुचि सँवारे ॥७॥

दोहा—आगे रचा विशुद्धका षोडसदल चितहार।
तब आज्ञा में द्विदल है पद्म श्रेष्ठ सुखकार ॥७॥

द्रु०—कमल कूल परे अतिपास में, प्रिय सहस्रदलान्वित पद्म है।
तहँ लखा हरि खेल विहारको, सुमनसे तनुमें धरि धैर्यको ॥११॥

सर समीप जावे यदि कोई। भव-भ्रम हृदय बीच नहिं होई।
विषय काल सर चहुँ दिशिआगे। काम क्रोध ग्राहक नहिं आगे।
गृह कुल सम्पति सुत परिवारा। कण्टक जाल स्पर्श नहि कारा।
प्रियजन सङ्गति विपिन घनेरा। स्वयं समाप्त होय दुख ढेरा ॥८॥

अगम मार्ग सर सुन्दर नीरा। कर्कश विकट मनोजय तीरा।
ताहि मध्य अवगाहन करहीं। सो नर सन्त सत्य छवि धरहीं।
सकल व्याधि बाधा हर जावे। जलधि हृदय मुक्ता फल पावे।
मुक्ता माल विभूषित अङ्गा। लोलुप लखत लगे तव सङ्गा ॥९॥

दोहा—अमृत सर कुल कुण्डली, नाल कमलकी सोय।
कमल रसामृत को पिवे, रहे बलवती होय ॥८॥

द्रु०—पकरि आसन के तल में उसे, तुरत चाँपहु सिंह सरूपमें।
गालित दामिनि दृष्टि विकास हो, परम धाम सुखाश्रय में रहो ॥१२॥

मानसरोवर हंस विराजे। दोष-कीच-गुण मुक्ता भ्राजे।
प्रथम कीच तजि मुक्ता खावे। तब मुक्ता तजिके पय पावे।
क्षुधा-पियास - रहित तनु चंगा। स्वयमानन्द रहे गत संगा।
सबहि समान देश रुचिकारी। मान सरोवर हंस बिहारी ॥१०॥

तामस - राजस - सात्विक कोई। सबहि श्यामरस श्यामल होई।
मन मराल तनु मान सरोवर। चिति मुक्ता पय पिवत सन्तवर।
सन्त समागम तीर्थ प्रयागा। तनु-मन-आत्म त्रिवेणी लागा।
तहाँ कुम्भ के पर्व बतावे। मज्जन करत मुक्ति मिल जावे ॥११॥

क्रमशः—

धारावाहिक

मानस सरस्वती

(गतांक से आगे)

श्री वेदान्ती जी

रामनामका प्रताप वर्णन करते हुए आगे कहते हैं—

राम सुकंठ बिभीषन दोऊ।
राखे सरन जान सब कोऊ॥
नाम गरीब अनेक निवाजे।
लोक वेद वर विरिद विराजे॥
राम भालु कपि कटक बटोरा।
सेत हेतु श्रम कीन्ह न थोरा॥
नाम लेत भव सिंधु सुखाहीं।
करहु विचारु सुजन मनमाहीं॥
राम सकुल रन रावन मारा।
सीय सहित निज पुर पगु धारा॥
राजा राम अवध रजधानी।
गावत गुन सुर मुनिवर वानी॥
सेवक सुमिरत नाम सप्रीती।
बिनु श्रम प्रबल मोहदल जीती॥
फिरत सनेह मगन सुख अपने।
नाम प्रसाद सोच नहिं सपने।
शुक सनकादि सिद्धि मुनि जोगी।
नाम प्रसाद ब्रह्मसुख भोगी॥
नारद जानेउ नाम प्रतापू।
जग प्रिय हरिहर हर प्रियआपू॥
नाम जपत प्रभु कीन्ह प्रसादू।
भगत सिरोमनि मे प्रहलादू॥

ध्रुव सगलानि जपेउ हरि नाऊँ।
पायउ अचल अनूपम ठाऊँ॥
सुमिरि पवन सुत पावन नामू।
अपने बस करि राखे रामू॥
अपतु अजामिल गज गनिकाऊ।
भए मुकुत हरि नाम प्रभाऊ॥
कहौं कहाँ लगि नाम बड़ाई।
राम न सकहिं नाम गुनगाई॥
चहुँ जुग तीन काल तिहुँ लोका।
भए नाम जपि जीव विसोका॥
वेद पुरान संत मत एहू।
सकल सुकृत फल राम सनेहू॥
सुमिरिअ नाम रूप बिनु देखे।
आवत हृदय सनेह विशेषे।
अगुन सगुन विच नाम सुसाखी॥
उभय प्रबोधक चतुर दुभाषी॥
रूप विशेष नाम बिनु जाने।
करतलगत न परहिं पहिचाने॥
नाम जीह जपि जागहिं जोगी।
विरति विरञ्चि प्रपञ्च बियोगी॥
ब्रह्म सुखहिं अनुभवहिं अनूपा।
अकथ अनामय नाम न रूपा॥

जाना चहहिं गूढ़ गति जेऊ।
नाम जीह जपि जानहिं तेऊ॥
साधक नाम जपहिं लय लाए।
होहिं सिद्धि अनिमादिक पाए॥
राम भगत जग चारि प्रकारा।
सुकृती चारिउ अनघ उदारा॥
चहूँ चतुर कहुँ नाम अधारा।
ज्ञानी प्रभुहिं विशेषि पियारा॥
चहुँ जुगचहुँ श्रतिनामप्रभाऊ।
कलि विसेषि नहिं आनउपाऊ॥
वंदउ नाम राम रघुवर को।
हेतु कृशानु भानु हिमकरको॥
विधि हरिहरमय वेद प्रान सो।
अगुन अनूपम गन निधानसो॥
महिमा जासु जान गन राऊ।
प्रथम पूजिअत नाम प्रभाऊ॥
जान आदि कपि नाम प्रतापू।
भयउ शुद्ध करि उलटा जापू॥
आखर मधुर मनोहर दोऊ।
बरन विलोचन जन जिय जोऊ॥
बिबसहु जासु नाम नर कहहीं।
जनम अनेक रचित अघ दहहीं॥
सादर सुमिरन जे नर करहीं।
भव वारिधि गो पद इव तरहीं॥
जासु नाम पावक अघ तूला।
सुमिरत सकल सुमंगल मूला॥
सुमिरत सुलभ सुखद सब काहू।
लोक लाहु परलोक निबाहू॥
बरनत बरन प्रीति विलगाती।
ब्रह्म जीव सम सहज संघाती॥

जन मन मंजु कंज मधुकर से।
जीह जसोमति हरि हलधर से॥

आद्यो रा तत्पदार्थः स्यान्मकारस्त्वम्पदार्थवान्।
तयोः संयोजनमसीत्यर्थे तत्त्वविदो विदुः॥
(राम रहस्योपनिषद्)

तात्पर्य यह है कि राममें र अक्षर तत्का वाचक है और म अक्षर त्वं का वाचक है और दोनोंको मिलानेवाली आ मात्रा असिकी वाचक है। अर्थात् रामका अर्थ तत्वमसि महावाक्य भी है। अतः राम नाम भगवान रामके सगुण निर्गुण दोनों स्वरूपों का साक्षात्कार करानेवाला तथा परोक्ष और अपरोक्ष ज्ञान करानेवाला है क्योंकि यह आवान्तर वाक्य भी है और महा-वाक्य भी है। इसी कारण राम नाम रामके सब नामोंसे श्रेष्ठ है।

संसारामय भेषजं सुखकरं श्रीजानकी जीवनम्।
धन्यास्ते कृतिनः पिवन्ति सततं श्रीरामनामामृतम्।

हे उमा! तत्पश्चात् भगवान राम ऋष्यमूक पर्वत के निकट पहुँचे और वहाँ हनूमानजीने आकर भगवान रामकी प्रार्थना की। उस सम्वादको सुनो।

नाथ जीव तव माया मोहा।
सो निस्तरइ तुम्हारेहि छोहा॥
सेवक सुत पति मातु भरोसे।
रहइ अशोच बनइ प्रभु पोसे॥
तब रघुपति उठाइ उर लावा।
निज लोचन जल सींचि जुड़ावा॥
सुनु कपिजिय मानसिजनिऊना।
तैं मम प्रिय लछिमनते दूना॥
समदरसी मोहि कह सब कोऊ।
सेवक प्रिय अनन्य गति सोऊ॥

सो अनन्य जाके असि, मति न टरई हनुमंत ।
मैं सेवक सचराचर, रूप स्वामि भगवंत ॥

तात्पर्य यह है कि सर्व जड़ जङ्गम प्रपंचके सहित मैं सेवक स्वर्ण भूषणवत भगवत स्वरूप ही हैं अर्थात् सच्चिदानन्द सर्वात्मा सर्वाधिष्ठान रामसे भिन्न न मैं न जगत सर्व राम ही है। ऐसा अटल निश्चयवाला ही अनन्य भक्त कहलाता है।

हनूमानजीने सुग्रीवको भी भगवान् राम और लक्ष्मणका दर्शन कराया और सुग्रीवने उस वस्त्रको रामको दिखलाया जिसको सीताजीने लंका जाते समय फेंक दिया था। सीताजीके उस वस्त्रको पहिचानकर भगवान्ने लीलासे शोक प्रकट किया। सुग्रीवने सीताजीकी खोज करने की प्रतिज्ञा की। भगवान् रामने मनुष्य लीला करते हुए सुग्रीवसे मित्रता की और सच्चे झूठे मित्रके लक्षण बतलाए।

जे न मित्र दुख होहिं दुखारी।
तिन्हहि बिलोकत पातक भारी॥
निजदुखगिरिसमरज करिजाना।
मित्रके दुःख रज मेरु समाना॥
कुपथ निवारि सुपथ चलावा।
गुन प्रगटै अवगुनहिं दुरावा॥
देत लेत मन शंक न धरई।
बल अनुमान सदा हित करई॥
बिपति काल कर सतगुन नेहा।
श्रुतिकह सन्तमित्र गुन एहा॥
कसे कनक मनि पारिखि पाए।
पुरुष परिखिअहिंसमय सुभाए॥

आगे कह मृदु वचन बनाई।
पाछे अनहित मन कुटिलाई॥
जाकर चित अहि गतिसम भाई।
असकुमित्र परि हरेहि भलाई॥
सेवक सठ नृप कृपन कुनारी।
कपटी मित्र सूल समचारी॥

जल पै सरिस बिकाय, देखहु प्रीतिकी रीति भल।
बिलग होय रस जाय, कपट खटाई परत ही॥

दूध पानीसे इतनी गहरी मित्रता करता है कि पानीको अपना स्वरूप बना देता है और दूधमें मिला हुआ पानी दूधके दाममें बिक जाता है। पानी भी दूधसे इतनी गहरी मित्रता करता है कि अग्निपर रखने से स्वयं जलेगा परन्तु दूधको नहीं जलने देगा। दूध भी पानीको जलता हुआ देखकर पानीके जलनेके पूर्व ही उफन कर अग्निमें गिर पड़ता है। मनुष्योंको भी परस्पर ऐसी ही प्रीति करना चाहिए और अपने पर्वत के समान दुःखको भूलकर मित्र के दुःखको दूर करना चाहिए और सहायता करनेमें तनिक भी कसर नहीं रखना चाहिये। भगवान रामने ऐसा ही करके दिखाया। वे अपने पर्वत के समान दुःखोंको भूल गये अर्थात् उन्होंने उस समय राज्यके त्यागकी व पिता दशरथ के मृत्यु की तथा सीताहरण की चिन्ता छोड़ दी और अत्याचारी बालिको मारकर सुग्रीवको राजा और बालिपुत्र अंगदको युवराज बनाया। बालिने भगवान रामका वाण हृदयमें लगनेपर प्रश्न किया—

धर्म हेतु अवतरेहु गोसाईं।
मारेहु मोहि व्याध की नाईं॥

मैं बैरी सुग्रीव पियारा।
अवगुन कवन नाथ मोहि मारा॥

भगवान् रामने उत्तर दिया कि—

अनुज वधू भगिनी सुत नारी।
सुनु शठ कन्या सम ए चारी॥
इन्हहि कुदृष्टि बिलोकई जोई।
ताहि वधे कछु पाप न होई॥
मूढ़ तोहि अतिसय अभिमाना।
नारि सिखावन करसि न काना॥
मम भुजबल आश्रिततेहि जानी।
मारा चहसिअधम अभिमानी॥

भगवान् राम ने बालि के प्रश्नका उत्तर देते हुए कहा कि तुम्हारे अन्दर एक नहीं अनेक अवगुण हैं जिसके कारण तुम्हारा इस प्रकार से वध करके अपराधका दण्ड दिया गया। युद्ध करते तो सन्मुख आकर ललकारते।

मानत सुख सेवक सेवकाई।
सेवक वैर वैर अधिकाई॥

मेरे शरणागत भक्त सुग्रीवको तू अधम शरीरका अभिमान रखनेवाला मारना चाहता है इस कारण तू मेरा वैरी है और मेरी शरणमें आनेसे सुग्रीव मुझे प्रिय है। मेरा अवतार धर्मकी रक्षा और धर्म बाधक दुष्टोंका संहार करनेके लिये हुआ है और तू अज्ञानी अधम शरीरके बलका केवल अभिमानी ही नहीं बल्कि अपने छोटे भाईकी स्त्री पर बलात्कारसे अधिकार करनेके कारण दुष्ट भी है। अतः तुझ ऐसे रावणसे भी अधिक बलवान दुष्टका संहार करना मेरे लिए उचित ही है। व्याध वत ओटसे मारनेसे तेरे वरदानकी भी रक्षा हुई,तेरी सेनाका भी संहार नहीं करना पड़ा और तुझे अपने अपराधका उचित दण्ड भी मिल गया क्योंकि जब कुदृष्टि करनेवालेको वध करना चाहिए तो अनुज वधू रतके बधमें कुछ अधिक कड़ाई करनी होगी क्योंकि बध ही अन्तिम दण्ड है। अतः ओटसे मारनेमें बधमें कड़ाई भी हो गई, क्योंकि अकस्मात् हृदयमें बाण लगनेसे तेरी बदला लेनेकी सारी अरमानें व्यर्थ हो गईं।

हे उमा! भगवान रामका इस प्रकारसे गम्भीर उत्तर सुनकर बालिका सारा अभिमान जाता रहा और उसके हृदयमें पूरा समाधान होकर भगवान रामके प्रति अलौकिक प्रेम उमड़ पड़ा। जब बालिका ही समाधान हो गया तो दूसरेको इस विषयमें सन्देह आक्षेप करना व्यर्थ और नासमझी है। प्रेममें मग्न होकर शरीर छोड़ते समय बालि भगवानसे कहने लगा कि हे प्रभो! दण्ड पानेपर भी तथा आपके बाणके द्वारा आपके सन्मुख प्राण छोड़नेपर भी मैं अभी तक क्या पापी ही बना रहा—

सुनहु राम स्वामी सन, चलन चातुरी मोर।
प्रभु अज हूँ मैं पापी, अंतकाल गति तोर॥

हे उमा!

सुनत राम अति कोमल बानी।
बालि शीस परसेउ निजपानी॥
अचल करौं तनु राखहु प्राना।
बालि कहा सुनु कृपानिधाना॥

हे उमा! बालिका धैर्य देखो कि—

परा विकल महि सरके लागे।
पुनि उठि बैठ देखि प्रभु आगे॥

वालिमें धैर्यके साथ-साथ भगवान्‌के चरणोंमें भक्ति और भगवान्‌के स्वरूपका ज्ञान भी था । यथा—

पुनिपुनिचितइ चरनचितदीन्हा ।
सफल जन्म माना प्रभु चीन्हा ॥

वालिमें पाण्डित्य और बुद्धिकी भी कमी न थी । यथा—

जन्म जन्म मुनि जतन कराहीं ।
अन्त राम कहि आवत नाहीं ॥
जासु नाम बल शंकर काशी ।
देत सबहि समगति अविनाशी ॥
मम लोचनगोचर सोइ आवा ।
बहुरिकिप्रभु असबनहिं बनावा ॥

बालि की अन्त समय की सावधानता अनुकरणीय है । यथा—

रामचरण दृढ़ प्रीति करि,बालि कीन्ह तनु त्याग ।
सुमन माल जिमि कंठ ते,गिरत न जानइ नाग ॥

हे उमा ! उसका भाग्य देखो कि:—

राम बालि निज धाम पठावा ।
नगरलोग सब व्याकुल धावा ॥

भगवान रामके धामके विषयमें सुनो—

यत्र न सूर्यो तपति यत्र न
वायुर्वाति यत्र न चन्द्रमा भाति ।
यत्र न नक्षत्राणि भान्ति
यत्रनाग्निर्दहतियत्र न मृत्युः प्रविशति ।
यत्र न दुःखं सदानन्दं परमानन्दं
शान्तं शाश्वतं सदा शिवम् ।
ब्रह्मादिवन्दितं योगिध्येयं परमंपदंयत्र
गत्वानिवर्तन्तेयोगिनः ॥

बालि के शरीर त्यागनेपर उसकी स्त्री तारा बहुत दुःखी हो गई और भगवानने उसको ज्ञान देकर उसके शोक मोहको दूर किया ।

तारा विकल देखि रघुराया ।
दीन्ह ज्ञान हर लीन्हीं माया ॥
छित जल पावकगगन समीरा ।
पंच रचित यह अधम शरीरा ॥
प्रगट सो तनु तव आगे सोवा ।
जीवनित्यकेहिलगितुम्ह रोवा ॥
उपजा ज्ञान चरन तब लागी ।
लीन्हेंसि परमभगतिवर मागी ॥

तात्पर्य यह है कि भगवान रामकी अनिर्वचनीय शक्तिसे आकाश, वायु, अग्नि, जल तथा पृथ्वी क्रमशः स्वप्नवत उत्पन्न होते हैं जिनके निमित्त और उपादान दोनों कारण सच्चिदानन्द भगवान् राम ही हैं। उन अपंचीकृत पंचभूतोंके मिश्रित सत्वगुणसे अन्तःकरण तथा मिश्रित रजोगुणसे प्राण उत्पन्न हुए । अपंचीकृत आकाशके सत्वगुणसे ज्ञानेन्द्रिय श्रोत्र तथा रजोगुणसे कर्मेन्द्रिय वाककी उत्पत्ति हुई और अपंचीकृत वायुके सत्वगुणसे ज्ञानेन्द्रिय त्वचा तथा रजोगुणसे कर्मेन्द्रिय हस्त की उत्पत्ति हुई और अपंचीकृत अग्निके सत्वगुणसे ज्ञानेन्द्रिय चक्षु और रजोगुणसे कर्मेन्द्रिय पाद की उत्पत्ति हुई और अपंचीकृत जलके सत्वगुणसे ज्ञानेन्द्रिय रसना और और रजोगुणसे कर्मेन्द्रिय उपस्थकी उत्पत्ति हुई और अपंचीकृत पृथ्वीके सत्वगुणसे ज्ञानेन्द्रिय घ्राण तथा रजोगुणसे कर्मेन्द्रिय गुदाकी उत्पत्ति हुई ।

अर्थात् मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार रूप अन्तःकरण तथा श्रोत्र, त्वचा, चक्षु, रसना, घ्राण पंच ज्ञानेन्द्रियाँ और वाक, पाणि, पाद, उपस्थ, गुदा पंच कर्मेन्द्रियाँ तथा पंच प्राण मिलकर १९ तत्व का सूक्ष्म शरीर अपंचीकृत भूतोंसे उत्पन्न हुआ। फिर एक-एक भूतके आधे-आधे भागोंमें अन्य चारो भूतोंके आठवें-आठवें भाग मिलाये गए। इस प्रकार पंच भूतों का पंचीकरण किया गया और पंचीकृत पंचभूतों के मिश्रित तमोगुणसे स्थूल देहोंकी रचना की गई। जैसे घटावच्छिन्न आकाश घटाकाश और घटानवच्छिन्न आकाश महाकाश कहलाता है, उसी प्रकार स्थूल, सूक्ष्म शरीरावच्छिन्न चेतन जीव है और स्थूल सूक्ष्म शरीरानवच्छिन्न चेतन परमात्मा रामका स्वरूप है जैसे घटाकाश और महाकाशका वास्तविक अभेद है केवल उपाधिकृत कल्पित भेद प्रतीत होता है उसी प्रकार हे उमा! घटा काशवत जीवका महाकाश-वत सच्चिदानन्द रामके परामर्थ निगुर्ण स्वरूपसे वास्तविक अभेद है केवल उपाधिकृत भेद प्रतीत होता है। जैसे घटके नाशसे घटाकाश का नाश नहीं होता उसी प्रकार पंच भौतिक देहोंके नाशसे जीवात्माका नाश नहीं हो सकता। उसी प्रकार जीवात्माके अविनाशी होने से देह अविनाशी नहीं हो सकते क्योंकि सत सदा सत ही रहता है और असत सदा असत ही रहता है। सत कभी असत रूप नहीं हो सकता और असत कभी सत रूप नहीं हो सकता। फिर असत क्षणभंगुर देहों के जन्म और नाश होनेपर हर्ष शोक करना मूर्खता है। जैसे जीर्ण वस्त्रके त्यागने और नये वस्त्र धारण करनेसे कोई शोकको प्राप्त नहीं होता उसी प्रकार जीर्ण देहको छोड़कर दूसरी नवीन देह धारण करनेमें किसीको शोक नहीं करना चाहिये और जो शरीर छोड़कर दूसरा शरीर ग्रहण न करे विदेह मोक्षको प्राप्त हो जावे तो उसके लिये क्या कहना है उसीका शरीर त्याग संसारमें सराहनीय है शोचनीय नहीं। अहंता ममताका त्याग हो जानेपर शरीरमें रहते हुए भी जीव मुक्त है और शरीर छोड़नेपर भी मुक्त है तथा अहंता-ममतासे युक्त होनेपर शरीरमें रहते हुए भी बद्ध है और शरीर छोड़ने पर भी बद्ध है। जैसे ढीला कपड़ा अग्नि लगने पर शीघ्र उतार कर फेंका जा सकता है और चिपका हुआ तंग कपड़ा अग्नि लगनेपर नहीं उतारा जा सकता, पहनने वालेको भी जला देता है उसी प्रकार अहंता ममतासे रहित शरीरमें रहना ढीले कपड़ेके समान है जिसमें कालाग्नि लगनेपर असंग रहकर छोड़ा जा सकता है और अहंता ममतासे युक्त होकर शरीरमें रहना तंग कपड़ा पहननेके समान है जिसमें कालाग्नि लगनेपर पहनने वाले को भी जलना पड़ता है अर्थात् पुनः जन्म लेना पड़ता है। जैसे नारियलमें जबतक जल भरा रहता है तब तक गरी नारियलमें चिपकी रहती है और रस सूख जानेपर गरी नारियल के अन्दर रहते हुए उससे पृथक हो जाती है उसी प्रकार सच्चिदानन्द सर्वात्मा रामके अज्ञान पर्यन्त जीव शरीर रूपी नारियलमें चिपका रहता है अर्थात् अहंताममता करता रहता है

और ज्ञान द्वारा अज्ञान नाश होनेपर नव द्वार वाले शरीरमें रहते हुए भी असंग निष्क्रिय रूप से स्थित रहता है। हे उमा! सुग्रीवको भी भगवानकी कृपासे ज्ञान प्राप्त हो गया और वह भगवान रामसे प्रार्थना करने लगा—

उपजा ज्ञान वचन तब बोला।
नाथ कृपामन भयउ अलोला॥
सुख संपति परिवार बड़ाई।
सब परिहरि करिहउँ सेवकाई॥
ए सब राम भगतिके बाधक।
कहहिं संत तब पद अवराधक॥
शत्रु मित्र सुख दुख जगमाहीं।
माया कृत परमारथ नाहीं॥
बालि परम हितजासु प्रसादा।
मिलेहुराम तुम्हसमन विषादा॥
सपने जेहि सन होई लराई।
जागे समुभत मन सकुचाई॥
अब प्रभु कृपाकरहुएहि भाँती।
सबतजिभजन करौं दिनराती॥

सुग्रीव का यह भाव है कि जैसे जाग्रत का ज्ञान होते ही स्वप्न तथा स्वप्नके शत्रु-मित्र सुख-दुःख भ्रम मात्र हो जाते हैं उसी प्रकार भगवान रामके स्वरूपको पहिचान लेने पर यह संसार भी स्वप्नके समान भ्रममात्र निश्चय हो जाता है। जब संसार सपना है तो अज्ञान निद्रा जनित स्वप्न भ्रमसे छुटकारा पाकर भगवान रामके परमार्थ स्वरूप जाग्रत की अवश्य शरण लेना चाहिये क्योंकि स्वप्न देखने वाला बास्तवमें स्वप्नमें नहीं होता जाग्रतमें निष्क्रिय रूपसे स्थित होता है। हे उमा!

जब सुग्रीव भवन फिर आये।
राम प्रवरषन गिरि पर छाए॥
फटिक सिला अतिशुभ्रसुहाई।
सुख आसीन तहां दोउ भाई॥
कहत अनुज सनकथा अनेका।
भगतिविरतिनृप नीतिविवेका॥
बरषा काल मेघ नभ छाए।
गरजत लागत परम सुहाए॥
लछिमन देखु मोर गन, नाचत वारिद पेखि।
गृही विरति रत हरष जस, विष्णु भगत कहुँ देखि॥
दामिनि दमक रहन घनमाहीं।
खल कै प्रीति जथा थिर नाहीं॥
बूँद अघात सहहिं गिरि कैसे।
खल के बचन संत सह जैसे॥
छुद्र नदी भरि चलि उतराई।
जस थोरे धन खल इतराई॥
समिटि-समिटि जल भरहिंतलावा।
जिमिसदगुनसज्जनपहिं आवा॥
भूमि परत भा ढाबर पानी।
जसु जीवहिं माया लपटानी॥
सुरसरि जलकृत वारुनि जाना।
कबहुँ नसंतकरहिंतेहि पाना॥
सुरसरि मिलेउ सो पावन कैसे।
ईस अनीसहिं अन्तर तैसे॥

तात्पर्य यह है कि जीवका स्वरूप शुद्ध बुद्ध मुक्त परमानन्द परिपूर्ण निर्विकार है परन्तु तीन देहोंमें किसी एकसे भी तादात्म्य करके विकारी सा हो जाता है जैसे मिट्टीका संग करनेसे स्वच्छ जल मैला हो जाता है। मिट्टी का संग करनेसे स्वच्छ जल मैला हो जाता

है। मिट्टीमें मिलनेपर भी मैलापन जलका धर्म नहीं है मिट्टीका ही धर्म है। अतः जल में मैलापन आरोप मात्र है। उसी प्रकार स्थूल सूक्ष्म कारण देहोंके धर्म विकार जीवमें आरोप मात्र हैं परमार्थतः नहीं हैं। यदि देहों के धर्मोंसे जीव विकारी हो जाता तो सुषुप्ति में स्थूल सूक्ष्म देहोंके विकार जीवको अनुभव करना चाहिये परन्तु समस्त स्थूल सूक्ष्म विकारों का सुषुप्तिमें व्यतिरेक हो जाता है। इस कारण केवल अज्ञानवश जीव निर्विकार होनेपर भी भ्रममात्र उपाधियोंके धर्म विकार अपनेमें देखा करता है। ज्ञान द्वारा अज्ञानका बाध होते ही जीव चौरासी लक्ष योनियों व स्वर्ग नरकसे छूट कर उसी प्रकार भगवान रामके निर्गुण ब्रह्म स्वरूपको प्राप्त हो जाता है जैसे नदी समुद्रको पाकर समुद्र रूपसे अचल स्थिर हो जाती है। यथा—

सरिता जलजलनिधिमहुँ जाई।
होइ अचल जिमिजिवहरिपाई॥
नव पल्लव भए बिपट अनेका।
साधक मन जस मिले विवेका॥
खोजत कतहुँ मिलइनहिंधूरी।
करइ क्रोध जिमि धरमहिं दूरी॥
महा वृष्टि चलि फूटिकियारी।
जिमिं सुतंत्रभए बिगरहिं नारी॥
कृषी निरावहिं चतुरकिसाना।
जिमि बुधतजहिं मोहमदमाना॥
ऊषर बरषइ तृन नहिं जामा।
जिमिहरिजनहिय उपजनकामा॥
विविध जन्तु संकुल महि भ्राजा।
प्रजा बाढ़ जिमि पाई सुराजा॥
जहँ तहँ रहे पथिक थकनाना।
जिमि इन्द्रिय गन उपजे ज्ञाना॥

०

क्षमा प्रार्थना

प्रारब्धवश सहसा मेरे अस्वस्थ हो जानेके कारण प्रस्तुत अंक जैसा चाहिये वैसा नहीं बन पाया है। अनेक आवश्यक सामग्री प्रकाशित न हो सकी हैं। विलम्बके साथ ही अनेक त्रुटियाँ भी परिलक्षित हैं। जिसके लिए हम क्षमा प्रार्थी हैं। पाठक गण सन्तोषपूर्वक सुधार कर पढ़ लेनेकी कृपा करें। मेरे सहयोगी श्री वेदान्ती जीने जो कुछ भी आपके समक्ष रखा है उसे स्वीकार करें। अब हम स्वस्थ हैं। आगामी मास गुरु महाराजकी कृपा और आशीर्वादसे नववर्षके विशेषांकके रूपमें हम "निर्गुणरामायणाङ्क" पाठकोंकी सेवामें प्रस्तुत करनेका यत्न कर रहे हैं "जो होय सोई सुख माने। करन करावन हार प्रभु जाने॥"

—सम्पादक

स्वामी विवेकानन्द के शब्दों में सनातनधर्म

लेखक—श्री गंगाप्रसाद पाण्डेय

'मतमतान्तरों और लोकाचारोंके मिलते रहने से, सनातन धर्मका वास्तविक रूप जब प्रायः लुप्तप्राय सा हो गया, और भारतीय सुधारकोंको उसकी असलियतको खोज निकालने में कठिनाई प्रतीत होने लगी, तो वे भी विदेशियोंके स्वरमें स्वर मिलाकर इसकी आलोचना में जुट गए। जिसका फल हुआ कि विधर्मियों को पनपनेका उन्मुक्त वातावरण मिलता गया। न केवल विदेशोंमें ही अपितु अपनी ही कुछ धरती पर शास्त्रीय उपासना पद्धतियों, अवतारवाद, मूर्तिपूजा और कर्मकाण्डोंको हेय दृष्टिसे देखा जाने लगा। यही प्रवृत्ति ब्रह्म समाज, आर्य समाज आदि मतोंके पनपनेमें मूल कारण बनी, हिन्दू धर्मकी दुरूहता, जिसकी ओर हिन्दू धर्मके सुधी समाजने अपेक्षाकृत कम ध्यान दिया था, मूर्तिपूजाकी निरर्थकता, पुराणोंकी कोरी कल्पनाएँ, उपासना पद्धतियोंकी अनुपयोगिता आदि नामोंसे हिन्दू धर्मकी एक बड़े पैमाने पर आलोचना होने लगी। बंगालके वेलूर मठके परमहंस रामकृष्णके अवतीर्ण होनेके पहले लगभग ५० वर्षों तक धर्मको लेकर अनन्त प्रश्न उठे और ये प्रश्न पश्चिमसे लेकर पूरबके बंगाल तक हिन्दू धर्मके अस्तित्वको ललकारने लगे। मनु द्वारा कथित धर्मविग्रह कोई पाखण्डका विषय नहीं, अपितु उन विग्रहों का सम्बन्ध मनुष्यकी प्रवृतियोंसे है। जिन धर्म विग्रहोंके विकासने ही मनुष्यको पशुओंके स्तर से ऊँचे उठाया, यदि उन्हींको अविवेकजन्य आडम्बरोंने ही चारों तरफसे ढँक लिया हो, तो उससे धर्मका शाश्वत रूप नहीं बिगड़ता। यह बहुत कुछ उसी तरह है जैसे कोई सोनेके पिण्ड पर मिट्टी लेप कर दे और देखने वाले दूरसे ही उसे मिट्टी कह दें। सुधारक गण असफल हुए हैं, इसका क्या कारण है? कारण यह कि उनमेंसे बहुत कम व्यक्तियोंने अपने धर्मका भलीभाँति अध्ययन किया है और उनमेंसे एक ने भी सब धर्मोंको जन्म देने वालेको समझनेके लिए जिस साधनाकी आवश्यकता होती है उस साधनाका अनुष्ठान नहीं किया है।

सदाचारभ्रष्ट वैराग्यविहीन एकमात्र लोकाचारोंमें ही विश्वास करनेवाले आर्य सन्तानोंने वेदान्तके सूक्ष्म तत्त्वोंको स्थूल रूपमें प्रकट करने वाले पुराणादि ग्रन्थोंके भी मर्मको ग्रहण करनेमें असमर्थ होकर अनन्त भावोंके समष्टि रूप अखण्ड सनातन धर्मको अनेक खण्डोंमें विभक्त कर दिया। मैं जिस धर्मका उपदेश करने जा रहा हूँ उसके समक्ष बौद्ध मत एक हीन बालक की तरह और ईसाई मत दूरकी गूँज मात्र है।

धर्मका सच्चा पथिक ही देश समाज और विश्व का सच्चा हितैषी बन सकता है। धर्मके जिस वास्तविक रूपको भूल कर भारत पतनके गर्तमें गिरा, आज उसे समझनेकी आवश्यकता है।

हृदयकी क्षुद्र दुर्बलता, धर्मकी दृष्टिमें त्याज्य है। धरतीकी सुख शान्तिके लिए मरने वाले वीरको दोनों लोक सुन्दर हैं। धर्म किसी व्यक्तिको कायर नहीं बनाता और नहीं अहिंसा की गुत्थियोंको गलत ढंगसे पनपने देता है। वह इस बातकी हिदायत अवश्य करता है कि लड़ना झगड़ना ठीक नहीं, सुख शान्तिके लिए प्रेम प्रसार होना परमावश्यक है परन्तु विघातक तत्त्वोंको देखते हुए चुप रहना कायरता है। दीन-हीन प्राणियों पर हाथ उठाना पाप है किन्तु हिंसक सिंहके दाँत तोड़ना धर्मकी दृष्टि में हिंसा नहीं। भौतिक समरसताके लिए धर्म-युद्ध अनिवार्य है इसीके लिए गीताका आदेश है 'मरोगे तो स्वर्ग मिलेगा और जीते रहे तो पृथ्वीका भोग भोगोगे'। मनुष्यको पापी कहना, निर्बलताको प्रसार देना आदि इस प्रकारकी सब बातें त्याज्य हैं। भारतीय धर्मकी अहिंसाकी बुनियाद भयोत्पादक तत्त्वोंसे लोहा लेने और कमजोरोंको पनपानेकी धरतीपर आधृत है। वह सर्वशक्तिमान् आत्मा कभी पापी नहीं होती, इस पृथ्वीमें पाप नामकी कोई भी चीज नहीं, यदि कोई पाप है तो मनुष्यको पापी कहना ही पाप है।

धर्मके नाम पर पृथ्वीको खूनसे रंगना भारतको कदापि अभीष्ट नहीं रहा। वेदोंसे लेकर पुराणों तकमें फैले धर्मको भगवान् व्यासने इन दो मोटी बातोंमें कह दिया था 'परोकारः, पुण्याय पापाय परपीडनम्' अर्थात् परोपकार ही सबसे बड़ा पुण्य है और दूसरोंको कष्ट देना ही महापाप है।' भारतका संदेश है—युद्ध नहीं सहायता, ध्वंस नहीं, आत्मस्थ कर लेना, भेद द्वन्द्व नहीं सामंजस्य शान्ति चाहिये। गीताके शब्दोंमें यूं कहा जा सकता है कि वही मेरा प्रिय भक्त है, जो सारे संसारको मुझमें और मुझको सारे संसारमें देखता है।

आवश्यक सूचना

"परमानन्द संदेश" के कृपालु सदस्योंसे निवेदन है कि "परमानन्द सन्देश" का वार्षिक चन्दा डाकखर्च दोनोंको एकमें सम्मिलित कर वार्षिक चन्दा ५.५० न० पै० कर दिया गया है। नये वर्ष ४ से प्रत्येक सदस्यों को परमान्द संदेशका वार्षिक शुल्क पाँच रुपये पचास नये पैसे भेजनेकी कृपा करनी चाहिए। आशा है हमारे कृपालु सदस्य सहयोग बनाये रखेंगे।

—व्यवस्थापक

क्षय मासके कारण विवाद ग्रस्त पर्व तिथियोंका काशीके विद्वान पण्डितों द्वारा शास्त्रीय निर्णय

२७ अक्टूबर को दशहरा और १५ नवम्बर को दीपावली होगी

●

तारीख १३ और १४ जुलाई सन् १९६३ को काशीराज श्री विभूतिनारायण सिंह एम० ए० डी० लिटके सभापतित्वमें भारतके विभिन्न प्रान्तोंसे पधारे ३००से अधिक धर्माचार्यों और चोटीके विद्वानोंकी उपस्थितिमें विद्वत्परिषद्का बृहद् अधिवेशन सम्पन्न हुआ, जिसमें भारत सरकार की ओरसे प्रतिनिधि राष्ट्रीय पंचांगके निर्माता श्रीनिर्मलचन्द्र लाहिड़ी भी उपस्थित थे। दो दिन तक शास्त्र वचनों पर गम्भीर विचार होता रहा नवीन और पुरातन सिद्धान्तवादियोंने अपने-अपने पक्षके समर्थनमें विचार प्रकट किये। पद्मभूषण पण्डितराज श्री राजेश्वर शास्त्री सभानियामक थे और काशीके पाँच दिग्गज विद्वान् मध्यस्थ मनोनीत थे। नवीन पक्षियोंसे सनातन सिद्धान्तियोंके प्रश्नों का जब कुछ भी उत्तर न बना तो सर्व सम्मति से निर्णय हुआ कि आजसे १४१ वर्ष पूर्व पेशवाओंकी पण्डित सभामें तथा सं० १९४४ में श्री काशीराजकी विद्वत् परिषद्में, जिसमें कि म० म० प० शिवकुमार शास्त्री पं० सुधाकर द्विवेदी जैसे चूड़ान्त विद्वान् उपस्थित थे, विक्रम सं० २०२०के क्षयाधि मासका निर्णय हुआ था तदनुसार दो आश्विन मानकर २७ अक्टूबरको विजय दशमी और१५नवम्बर को दीपावली होनी चाहिए। जगद्गुरु सङ्कराचार्य ज्योतिष्पीठाधीश्वर और स्वामी करपात्री जी महाराज आदि सभी धर्माचार्य उक्त निर्णयके समर्थक हैं।

बंगाल और उड़ीसा आदि प्रान्तोंकी सरकारोंने पहिलेसे ही उपर्युक्त व्यवस्थाके अनुसार छुट्टियाँ नियत कर रखी हैं। केन्द्रीय सरकारने भी अपनी सन् १९५६ के २३ अक्टूबरकी धारा १ अनुच्छेद ४के अनुसार शास्त्र वचनोंके सामने नत मुख हो २७अक्टूबर और १५ नवम्बरको ही छुट्टियाँ घोषित कर दी हैं, अतः वह धन्यवाद की पात्र है।

आश्विन अधिक मास और मार्गशीर्ष शुक्ल पौष कृष्णात्मक एक मास लुप्त हो जानेके कारण दशहरा और दीपावलीकी भाँति आश्विनसे पौष तकके पर्व और त्योहारोंके निर्णयमें परमानन्दसंदेशके पाठकोंकी जिज्ञासा शान्तिके लिए हम उक्त समयके पर्व और त्योहारोंकी शास्त्रसिद्ध तालिका नीचे अंकित करते हैं पाठक तदनुसार आचरण करें—

शारदी नवरात्र आरम्भ	१८ अक्टूबर सन् १९६३ को	होगा।
विजयदशमी (दशहरा)	२७ अक्टूबर सन् ,, को	होगा।
शरद पौर्णिमा	१ अक्टूबर ,, ,, को	होगा।
दीपावली कार्तिक अमावस्या	१५ नवम्बर ,, ,, को	होगी।
गोपाष्टमी	२४ नवम्बर ,, ,, को	होगा।
कार्तिक पौर्णिमा	३० नवम्बर ,, ,, को	होगी।
गीता जयन्ती (पौष शुक्ला)	२६ दिसम्बर ,, ,, को	होगी।

विज्ञप्ति—इस वर्ष मार्गशिर और पौष दोनों महीने इकट्ठे हो गए हैं, इसलिए मार्गशीर्ष पक्षकी प्रत्येक तिथिको पूर्वार्धसम्बन्धी सब धार्मिक कृत्य सम्पन्न होंगे। और उत्तरार्धमें पौष कृष्ण सम्बन्धी सब कृत्य सम्पन्न होंगे। तदनुसार मार्गशुक्ल ११ निमित्तक गीता जयन्ती पौष शुक्ल ११ को सम्पन्न होगी।

अनमोल बोल

⊙

अन्ततः हम लोगोंमें जो सबसे महान् हैं अथवा सबसे छोटे हैं, उनको जो शक्ति दी गयी है वह हमारी अपनी नहीं हैं, वह उस खेलके लिये दी गयी है जिसे हमें खेलना है, उस कामके लिये दी गयी है जिसे सम्पन्न करना है। यह शक्ति हमारे भीतर निर्मित हो सकती है, परन्तु उसका वर्तमान स्वरूप चाहे वह शक्तिका ही अथवा निर्बलताका, अन्तिम नहीं है, किसी भी समय वह स्वरूप बदल सकता है, किसी भी समय निर्बलताको हम शक्तिमें बदलता हुआ देख सकते हैं—अयोग्य को योग्य होते देख सकते हैं, एकाएक अथवा धीरे-धीरे यंत्र-रूपी चेतनाको नये परिमाणमें बढ़ते हुए अथक अपनी आन्तरिक शक्तियोंको विकसित करते हुए देख सकते हैं। हमारे अन्दर ऊपर और चारों तरफ भागवत सर्व-सामर्थ्य विद्यमान हैं और अपने कामके लिये विकासके लिये, अपने रूपान्तरकारी परिवर्तनके लिये हमें उसी पर निर्भर होना होगा। यदि हमको अपने काममें विश्वास हो, अपने यंत्रत्व और अपने को कार्यमें नियुक्त करने वाली दिव्य शक्तिमें विश्वास हो तो एकदम संकटके ही समयमें, विघ्न-बाधाओंको झेलने और अतिक्रम करने के सिलसिलेमें ही शक्ति आयेगी और जिस सर्व-सामर्थ्यके हम अधिकाधिक पूर्ण पात्र बनते जा रहे हैं, उसके जितने अंशकी आवश्यकता है उसे धारण करनेकी हम क्षमता पा जायेंगे।

* * *

श्री अजित मेहता तथा श्री भद्रसेन वैद्य की ओर से कल्पना प्रेस वाराणसी में
भद्रसेन वैद्य द्वारा सम्पादित, मुद्रित एवं प्रकाशित